नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—६५

रीतिकालीन रसश

लेखक

डा० सच्चिदानंद चौधरी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

समर्पण

जिसका करुणाकण ही मेरे जीवन की निधि है, उसी 'सदार्द्रचित्ता' माता के मंगलमय चरणों में—वाचिक पुष्पों की यह एक भावनामयी अंजलि।

जैसो सुख है ब्रह्म को, मिले जगत् सुधि जाति।
सोई गति रस में मगन, भये सुरस नौ भाँति॥

—कुलपति, रसरहस्य।

अलंकार शब्दार्थ के, फूल फलनि आमोद।
मधुर सुजसरस अमरतरु, अमर अमी रसमोद॥

—देव, शब्दरसायन।

रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विसेष।
स्वादु विसेषहिं तें सबै, भाव प्रभृति रस लेख॥

—कुमारमणि, रसिकरसाल।

सुनि कबित्त को चित्र मधि, सुधि न रहे कछु और।
होइ मगन वहि मोद में, सो रस कहि सिरमौर।

—सोमनाथ, रसपीयूषनिधि।

जा हिय प्रीत न सोक है, हँसी न उत्सह ठान।
ते बाते सुन क्यों द्रवै, दृढ़ ह्वै रहै पषान॥

—भिखारीदास, काव्यनिर्णय।

प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी अपनी शास्त्रविज्ञान ग्रंथमाला में भाषा एवं शास्त्रविषयक अनुशीलनपरक ग्रंथो का प्रकाशन करती आई है। इस ग्रंथमाला में हिंदी व्याकरण, व्यंजना और नवीन कविता, हिंदी शब्दानुशासन, रसमीमासा, अर्थतत्व की भूमिका, लक्षणा और उसका हिंदी काव्य में प्रसार, सूत्रशैली और अपभ्रंश व्याकरण एवं हिंदीभाषा पर फारसी एवं अंग्रेजी का प्रभाव जैसे गंभीर ग्रंथों का प्रकाशन किया जा चुका है। इस ग्रंथमाला मे प्रकाशित होनेवाला यह नवाँ पुष्प है।

इस ग्रंथ के दो खंड हैं। प्रथम खंड में रीतिकालीन रसशास्त्र के अंतर्गत नायिकाभेद आदि का विवेचन बहुत ही सरल भाषा एवं सुसंबद्ध प्रणाली से प्रस्तुत किया गया है। दूसरे खंड में विभिन्न रीतिकालीन रसशास्त्रियो की काव्यात्मक रीतिरचनाओं का विभिन्न विषयात्मक वर्गीकरण के अंतर्गत संकलन किया गया है। अंत मे परिशिष्ट के अंतर्गत विषयसंबद्ध विशेष अवतरणो का समावेश कर दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय के अध्येताओं के लिये इस कारण विशेष उपयोगी है कि इसमे एक साथ ही विभिन्न आचार्यों का तद्विषयक दृष्टिकोण समग्रतः यथास्थान उपलब्ध हो जाता है। कहने की आवश्यकता नही, सुधी लेखक ने इसे रीतिकालीन रससंबंधी आलोचनात्मक कोश के रूप में उपस्थित करके हिंदी के इस अंग की पुष्टि में यथेष्ट सहयोग प्रदान किया है।

आशा है, इससे रीतिकालीन रस विवेचन संबंधी अनुशीलन एवं विवेचन करनेवाले आलोचकों और शोधकर्ताओं को सहायता प्राप्त होगी।

२० मार्गशीर्ष,—संवत् २०२६ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशनमंत्री

पुरोवाक्

हिंदी साहित्य के रीतिकाल का वैशिष्ट्य यह है कि उसका महत्त्व काव्य की दृष्टि से भी है और शास्त्र की दृष्टि से भी। विद्वानो ने उभयथा उसका मूल्यांकन किया है किंतु पुनराख्यान की इयत्ता नहीं होती। आनंदवर्धन ने काव्य के प्रसंग में कहा है कि—

न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुण।
—यदि प्रतिभा हो तो काव्य के विषय का अंत नहीं है।

यह कथन हलके से परिवर्तन के साथ शास्त्र के प्रसंग मे भी सही है—

न शास्त्रार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुणः।
—यदि प्रतिभा हो तो शास्त्र के विषय का अंत नही है।

डा० सच्चिदानंद चौधरी हिंदी और संस्कृत के अभिनिविष्ट विद्वान् हैं, साथ ही प्रतिभा के धनी। आपका संस्कृतज्ञान परंपरागत पद्धति से पुष्ट तथा आधुनिकता के आलोक से दीप्त है। हिंदी के उच्चतम अध्यापन एवं शोध-निर्देशन के दीर्घ अनुभव ने आपकी तत्त्वाभिनिवेशी दृष्टि को उदार और मर्मग्राही बना दिया है। रीतिकालीन साहित्य पर गंभीर विचार के लिये जो शास्त्रीय उपलब्धि अपेक्षित है, वह डा० चौधरी मे पूर्णतः विद्यमान है। आप सहृदय भी हैं और सुधी भी। रीतिकालीन कवियो द्वारा प्रस्तुत रसनिरूपण को आपने श्रमपूर्वक अध्येताओ तथा अनुसंधाताओ के लिये एकत्र सुलभ कर दिया है। इसे रीतिकालीन रसनिरूपण का कोश कहना असंगत न होगा। प्रारंभ की वैदुष्यपूर्ण भूमिका मे विवेच्य विषय की समीचीन तथा तटस्थ मीमासा है।

मेरा विश्वास है कि यह ग्रंथ रीतिकाल के एक महत्त्वपूर्ण अंग को समझने में उपादेय और सहायक सिद्ध होगा। मै इसका स्वागत करता हूँ और डा० चौधरी को साधुवाद देता हूँ।

देवेंद्रनाथ शर्मा
आचार्य तथा अध्यक्ष,
हिंदी विभाग
पटना विश्वविद्यालय

पटना
१६-१२-६६

प्राक्कथन

रीतिकालीन रसशास्त्र के संबंध में या तो अत्युक्तिपूर्ण शब्दो में उसकी गरिमा का बखान किया जाता है या फिर बड़े ही प्रकर्षपाती शब्दों में उसकी हीनता का प्रतिपादन किया जाता है। आशय यह कि दो सौ वर्षों के काल-फलक पर फैले हुए इन सिद्धांतग्रंथो के बारे में संतुलित दृष्टिकोण अभी तक नहीं बन पाया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। सामान्य पाठको को रीतिकालीन रसशास्त्र से संबद्ध ये दुर्लभ ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से कुछेक तो अभी भी हस्तलिखित रूप में संग्रहालयो में पडे हैं और जो अल्पाधिक प्रकाशित भी हुए हैं वे प्रकाशन की प्राचीनता के कारण सामान्यतः दुष्प्राप्य हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी की मध्यकालीन रसचिंतना के विषय में जो धारणा बनायी जाती है वह या तो सुनी सुनायी बातो के आधार पर या फिर रीतिकाल पर लिखे गए इतिहास ग्रंथो और आलोचनात्मक संदर्भग्रंथो को उपजीव्य बनाकर। निष्कर्ष यह कि हिंदी के रसाभिनिवेशी पाठको की धारणा का आधार प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है। इस कमी को दूर करने की दिशा में अभी तक किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ।

पिछली दशाब्दी के भीतर रीतिकालीन कुछेक आचार्यो की ग्रंथावलियाँ भी नागरीप्रचारिणी सभा, (काशी), हिंदुस्तानी एकेडेमी (इलाहाबाद) तथा गंगा ग्रंथागार (लखनऊ) आदि प्रकाशनसंस्थाओ द्वारा प्रकाश में लाई गई हैं किंतु उनकी संख्या भी अत्यल्प है। प्रायः अभी तक केशवग्रंथावली, मतिराम-ग्रंथावली, भिखारीदासग्रंथावली, पद्माकर ग्रंथावली ये दो चार ग्रंथावलियाँ ही प्रकाशित हुई हैं। इधर हाल मे केशव, देव, मतिराम, भिखारीदास प्रभृति कतिपय आचार्यों के संबंध मे विभिन्न अनुसंधानकर्त्ताओ द्वारा शोधप्रबंध भी लिखे गए हैं। इन प्रबंधो में उन आचार्यों के आचार्यत्वनिर्धारण के प्रसंग में उनकी रससिद्धांतीय मान्यताओ पर भी प्रकाश डाला गया है। इस क्रम में कभी पादटिप्पणी के रूप में और कभी विवेचन के अंतराल में उन आचार्यों के कतिपय सैद्धातिक उद्धरणो को भी प्रस्तुत किया गया है। विलक्षणता यह है कि ये शोधग्रंथ भी प्राय. उन्ही आचार्यों पर लिखे गए हैं जिनकी ग्रंथावलियो का ऊपर उल्लेख किया गया है। फलतः प्रकाशित और सुलभ रससामग्री की दिशा में कोई अभिवृद्धि नहीं हो पाई है। रीतिकालीन समस्त रससामग्री का एकत्र संकलन और संपादन तो दूर का रहा ! अभी तक इस दिशा में जो प्रयास

हुआ है वह रीतिकाल की अजस्र रसधारा में से दो चार घड़े उलीच लेने जैसा ही। तत्त्वतः इसी अभाव को दूर करने के हेतु मैंने "रीतिकालीन रसशास्त्र" लिखने की योजना बनायी। प्रस्तुत प्रयास उसी की परिणति है।

इस ग्रंथ के दो खंड हैं। प्रथम खंड के अंतर्गत 'रीतिकालीन रसशास्त्र की भूमिका' प्रस्तुत की गई है। इस भूमिका में रीतिकालीन रसशास्त्र से संबद्ध आवश्यक बातें प्रतिपादित की गई हैं। आरंभ में रससिद्धांत के महत्त्व और और उसकी शाश्वतिकता को दिखा देने के उपरात संस्कृत काव्यशास्त्र की संक्षिप्त रसधारा, रीति काव्यशास्त्र का उद्‌भव और विकास, रीतिकाल के प्रमुख काव्यसंप्रदाय, रीतिकालीन विवेचन की सीमाएँ और रीतिकालीन रसविवेचना के विशिष्ट अंश (जिसके अंतर्गत रसस्वरूप और अभिव्यक्ति, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, स्थायी भाव, रसभेद और रसदोष पर क्रमशः प्रकाश डाला गया है) आदि प्रस्तुत किए गए हैं। अंत में इस युग की रसचिंतना का सर्वेक्षण भी किया गया है।

ग्रंथ के दूसरे खंड में 'रीतिकालीन रसशास्त्र' के मूल अंश उपस्थापित किए गए हैं। इस खंड को भी पृथक् पृथक् अध्यायों में विभक्त कर क्रमश. रसस्वरूप और अभिव्यक्ति, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव, स्थायीभाव, रसभेद और रसदोष से संबद्ध रीतिकालीन ग्रंथों के मूल उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है। इन अध्यायो में जिन आचार्यों के ग्रंथो के उद्धरण संगृहीत किए गए हैं उनके नाम हैं—केशव, चिंतामणि, तोष, मतिराम, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास; रसलीन, रूपसाहि, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, बेनी प्रवीन, करन कवि, प्रताप साहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराय और लछिराम आदि। ग्रंथ के अंत में तीन परिशिष्ट भी संलग्न हैं। प्रथम परिशिष्ट में रीतियुग के परवर्ती जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' और बिहारीलाल भट्ट की मूल रससामग्री का संकलन है और द्वितीय परिशिष्ट में बिहारीलाल भट्ट के द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक नायिकाभेदों के मूल उद्धरण संगृहीत हैं। तृतीय परिशिष्ट के अंतर्गत रीतिकालीन रसग्रंथों का परिचयात्मक विवरण भी पाठको की सुविधा के लिये दे दिया गया है।

मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन से रीतिकालीन रसचिंतना को गहराई के साथ प्रत्यक्ष अवलोकन की चाह रखनेवाले विद्वान्, छात्र, अनुसंधायक और सामान्य पाठक निश्चय ही लाभान्वित होंगे। मेरी धारणा है कि यदि इसी प्रकार अलंकार, ध्वनि आदि अन्य काव्य तत्त्वों के भी संकलन प्रकाशित किए जायँ तो हिंदी साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति हो जायगी। सच पूछिए तो एतादृश ग्रंथो से ही हिंदी के निजी काव्यशास्त्र का निर्माण होगा।

आचार्यप्रवर प्रो० देवेंद्रनाथ शर्मा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पटना विश्व विद्यालय का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ जिन्होने 'आमुख' के माध्यम से आशीर्वाद देकर इस ग्रंथ की गरिमा बढाई है।

यदि इस ग्रंथ के प्रकाशन से हिंदी काव्यशास्त्र के विधायको और अधीतियों को थोड़ा भी परितोष हुआ तो मै अपने परिश्रम को सफल आँकूँगा।

हरिशयनी एकादशी, १९६८ ई० } —सच्चिदानंद चौधरी

विषयानुक्रम

प्रथम खंड

द्वितीय खंड

सूचना—प्रस्तुत पुस्तक में १२९ से १३६ तक के पृष्ठाक भूल से दुबारा लग गए हैं।

रीतिकालीन रसशास्त्र की भूमिका

[प्रथम खंड]

रीतिकालीन रसशास्त्र

भूमिका

रससिद्धांत का महत्व

भारतीय काव्यशास्त्र के सुदीर्घ कालक्रम मे अनेक काव्य सप्रदाय हो गए हैं—अलंकार सप्रदाय, रीति (गुण) संप्रदाय, वक्रोक्ति सप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय, औचित्य संप्रदाय और रस सप्रदाय। इनमें सर्वाधिक स्थायी एवं महत्वपूर्ण रस संप्रदाय है। इन सप्रदायों की पारस्परिक तुलना से भी यही सिद्ध होता है। रस के महत्व का मुख्य कारण है उसका काव्योत्पत्ति का आदि स्रोत होना। काव्य के अन्य उपकरणों—रीति, गुण, अलंकार आदि को यह श्रेय प्राप्त नही है। काव्य रचना की प्रक्रिया पर भी ध्यान देने से यह विषय नितात स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक मनुष्य पर उसके आभ्यंतर और बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य इतना सवेदनशील प्राणी है कि ससार की छोटी से छोटी घटना या व्यापार की प्रतिक्रिया भी उस पर होती है। ये प्रतिक्रियाएँ ही मानवीय सवेदनाओं को भावरूप मे परिणत कर देती हैं। इन भावों का विस्तार इतना होता है कि मनुष्य उन्हे अपने हृदय की सीमित परिधि में बाँध कर नहीं रख सकता है। उन्हे अभिव्यक्त करने के लिये वह बाध्य हो जाता है। कलाप्रवण मनुष्य भावों की इस विस्तार दशा में अपनी योग्यता के अनुसार शब्द, रेखा, लय, गति आदि के माध्यम से उन्हे अभिव्यक्त कर क्रमशः कविता, चित्र, संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं का सृजन करता है। रवींद्र ठाकुर की यह उक्ति इस प्रसंग में ध्यातव्य है—

मैन हैज ए फंड आव् इमोशनल एनर्जी ह्विच इज नौट ऐट आल अकुपाइड विद हिज़ सेल्फ-प्रिज़र्वेशन। दिस सर्प्लस सीक्स इट्स आउटलेट इन द क्रिएशन आव् आर्ट; फौर मैं'स सिविलिजेशन इज़ बिल्ट अपौन दिस।

—ह्वाट इज़ आर्ट ? (निबंध)

जिन मनुष्यों को भावाभिव्यक्ति की ऐसी शक्ति या प्रतिभा उपलब्ध नही है, वे भी रो हँस कर, बातचीत कर या अन्य किसी विकृत ढंग से अपने हृद्गत भावों को व्यक्त करते पाए जाते हैं। फलतः यह सिद्ध होता है कि भावाभिव्यक्ति

ही काव्य या अन्य किसी कला के सृजन का मूल कारण है। यह भावाभिव्यक्ति ही वस्तुतः रस है। इसी प्रकार काव्य के पाठक भी भावों की विस्तारदशा में रस का आस्वाद करते हैं। हृदय की मुक्तावस्था में ही काव्य की सर्जना भी होती है और उसका आस्वाद भी। रामचन्द्र शुक्ल जी ने ठीक ही कहा है—

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।

—कविता क्या है (निबंध)

कहने का तात्पर्य यह कि कवि और भावक दोनों के लिये रस अत्यत महत्व-पूर्ण है।

जहां तक काव्यशास्त्र में रस सिद्धात के महत्व का प्रश्न है, भरत से लेकर जगन्नाथ तक प्रायः प्रत्येक आचार्य काव्य के रस तत्व से परिचित है। विभिन्न संप्रदायों में विश्वास रखते हुए भी रस को महिमा सभी ने गाई है। अतएव काव्यशास्त्र में रसवाद का महत्व अक्षुण्ण एवं निःसदिग्ध है।

शास्त्रीय उलझनों से तटस्थ होकर सर्वसाधारण अशिक्षित मनुष्य काव्य से क्या समझता है, इस पर भी यदि विचार किया जाय तो रस की सार्वभौम सत्ता ही प्रमाणित होगी। अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित ग्रामीणजन भी नाटक, नौटकी, रामलीला या सिनेमा देखते हैं। कभी कभी रामायण, महाभारत और पुराणों के प्रवचन तथा ग्राम्य गायकों के सगीत भी सुनते है। इन सब के देखने और सुनने से उन्हे भले ही थोड़ी बहुत शिक्षा भी मिलती हो पर सबसे बढ़कर जो उन्हें प्राप्त होता है वह है आनंद। यह आनंद भी अनेक प्रकार का होता है। इसका स्वरूप चाहे हास्यात्मक हो, करुणात्मक हो, शृंगारात्मक हो या विस्मयात्मक, परंतु वह है आनंद ही। वस्तुतः यह आनदोपलब्धि रसास्वाद से अभिन्न है। रस की आनंदस्वरूपता किसी से छिपी नही है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखे या काव्यशास्त्रीय ढंग से विचार करें किंवा साधारण जनो के स्थूल दृष्टिकोण से सोचे, काव्य मे रस की उपादेयता माननी ही पड़ेगी। अतएव सर्वमान्य रसतत्व के आधार पर काव्यानुशीलन करने वाले 'रससंप्रदाय' की चितनधारा की व्यापकता एवं महत्व में सदेह की थोड़ी भी गुजायश नही है।

२. परंपरागत काव्यशास्त्र की रसधारा

भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र के आधार पर ज्ञात होता है कि रसों का आदि स्रोत 'अथर्ववेद' है। रूपकों की उत्पत्तिचर्चा के क्रम मे भरत मुनि ने बताया है कि ब्रह्मा ने देवताओं के मनोरंजन के लिये 'नाट्यवेद' नामक पाँचवाँ वेद

निर्मित किया। यह पाँचवाँ वेद ऋक्, यजुः, साम और अथर्वण नामक चारों वेदो से लिए गए तत्वो का समिश्रण मात्र है। ऋग्वेद से कथोपकथन, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गोत, तथा अथर्ववेद से रस का सकलन कर नाट्यवेद का प्रणयन हुआ —

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

—नाट्यशास्त्र, १।१७

'रसान्' के बहुवचन प्रयोग द्वारा रस की अनेकता का भी सूचन हो रहा है। स्पष्ट है कि अथर्ववेद मे भी अनेक रसो का अस्तित्व था। तथापि रसविवेचन का सर्वप्रथम श्रेय भरत को ही मिलना चाहिए। भरत के पूर्ववर्ती भी कुछेक रस-विवेचक भी हो गए है, पर उनके ग्र थ आज अनुपलब्ध है।

उपनिषदो म भी रस का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् मे रस को ब्रह्म का पर्याय माना गया है। उसी ब्रह्मस्वरूप रस का साक्षात्कार होने पर योगियों को आनद की उपलब्धि होती है।[1] वस्तुतः रसास्वाद की अवस्था म काव्य के पाठक या रूपकों के प्रेक्षक उसी प्रकार रसमग्न होते है जैसे निर्विकल्पक समाधि की स्थिति मे ब्रह्मसाक्षात्कार-परायण योगी जन। छादोग्य उपनिषद्, कठोपनिषद् और सर्वोपनिषद् में भी रस शब्द का उल्लेख मिलता है। छादोग्य ब्रह्म के पर्यायवाची रस से ही वेदों की सृष्टि बताता है।[2] कठ और सर्व म रस-नास्वाद के अर्थ मे रस शब्द का प्रयोग हुआ है। फलतः औपनिषदिक चितन के अनुसार रस की 'ब्रह्मास्वादसहोदरता' भली भाँति प्रमाणित होती है।

उपनिषदो के अनंतर पौराणिक काल का आगमन होता है। अग्निपुराण में अन्य विषयो की चर्चा के साथ साहित्यशास्त्र का भी थोड़ा बहुत विवरण मिलता है। भगवान् व्यास ने अग्निपुराण म रस को काव्य का जीवन ही माना है। तथापि वाग्वैदग्ध्य की महत्ता को आप अस्वीकृत नही करते हैं। अग्निपुराणकार ने रस की महत्ता तो स्वीकार की है किंतु शृ गार को विशेष महत्व प्रदान किया। नीरस वाणी को तो आप काव्य मानने को भी प्रस्तुत नही है। विष्णुपुराण के किसी अश में भी काव्यशास्त्रीय बातें हैं किंतु वहा इसका उल्लेख नही है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश मे यथाप्रसंग विष्णुपुराण से कुछ एक उद्धरण गृहीत किए हैं।

१. तैत्तिरीय उपनिषद्, ११।७।१।
२. छांदोग्योपनिषत्, ४।१७।

जहा तक रस के सैद्धातिक विवेचन का सबंध है, सबसे पहले नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि का नाम अति आदर के साथ लिया जायगा। भरत को रससप्रदाय का प्रधान प्रवर्तक माना जाता है। यद्यपि इनके नाट्यशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय दृश्यकाव्य या रूपक है, परतु रूपकों की मुख्य सपत्ति इन्होंने रस ही मानी है। इनके अनुसार रसरहित नाटक निरर्थक हैं। रूपकों का प्रधान उद्देश्य प्रेक्षकों के हृदयनिष्ठ रत्यादि भावो को उद्रिक्त कर रसास्वाद कराना ही है।

नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत मुनि सैद्धातिक विवेचना की दृष्टि से आदि आचार्य कहे गए हैं। किंतु इनके पूर्व भी रस सिद्धांत के प्रतिपादक अनेक आचार्य थे जिनका उल्लेख स्वयं भरत ने नाट्यशास्त्र मे किया तथा अन्य लेखकों द्वारा भी दूसरे प्रामाणिक ग्रंथो में किया गया है। भरत के 'अत्रानुवश्यौ श्लोकौ भवतः' से स्पष्ट है कि भरत मुनि के पूर्व भी रस सिद्धात का स्थापन हो चुका था। परंतु खेद का विषय है कि उन आचार्यों तथा उनकी कृतियों के नाम अज्ञात हैं। राजशेखर ने काव्यमीमासा में बताया है कि अलंकारशास्त्र का प्रथम ज्ञान शिव से ब्रह्मा को प्राप्त हुआ और तदनतर दूसरों को। समस्त अलंकारशास्त्र को अठारह अधिकरणों मे बाँटा गया और प्रत्येक अधिकरण के अध्यापन का भार पृथक् पृथक् कृतविद्य आचार्यों को सौंपा गया।[३] राजशेखर की तालिका के अनुसार भरत रूपकों के निरूपण कार्य में लगे और रसनिरूपण का दायित्व नंदिकेश्वर ने सँभाला। तथापि रूपक निरूपण के प्रसाग मे भरत ने भी वाचिक अभिनय मे रस का विवेचन किया। फलतः रसों की दो परपराएँ हो गईं। प्रथम भरत की रसपरंपरा और दूसरी नदिकेश्वर की। नदिकेश्वर की कोई भी कृति अद्यावधि उपलब्ध नही हुई है। अतएव नंदिकेश्वरवाली रसपरपरा विलुप्त हो गई और भरत की परपरा आज तक उज्जीवित है।

शारदातनय विरचित 'भावप्रकाशन' नामक ग्रथ में वासुकि, नारद तथा व्यास की एक तीसरी रसपरंपरा का भी उल्लेख मिलता है। इस परंपरा के आदि प्रवर्तक आचार्य वासुकि है। ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित भरत की रसपरपरा से इसकी इतनी ही भिन्न विशेषता है कि जहा भरत ने आठ रस माने वहा वासुकि ने नौ रस माने हैं। भरत ने शात को नाट्य रस नही माना परंतु वासुकि ने इसे भी रसों के अंतर्गत परिगणित किया हैं। सभवतः इस परंपरा का सबंध भक्त्यात्मक कीर्तन-पद्धति से रहा हो। इनके अतिरिक्त भी कुछ अज्ञात कृतियों में प्राचीन आचार्यों के

३. राजशेखर, काव्यमीमांसा, पृ० १।

नामों का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। पता नही, उन्होंने रस सिद्धात पर अपने विचार अभिव्यक्त किए थे या नहीं। सातवीं सदी के आचार्य दडी के काव्यादर्श ग्रंथ की हृदयगमा और श्रुतानुपालिनी नामक टीकाओं में कश्यप, वररुचि, नंदिस्वामी और ब्रह्मदत्त प्रभृति शब्दशास्त्रियों के नाम पाए जाते है। नदिस्वामी तो सम्भवतः उपर्युक्त नदिकेश्वर हो सकते हैं परतु ये अन्य आलंकारिक कौन थे तथा इनकी रचनाएं कौन सी थीं—ये सब अभी तक अज्ञात हैं। हो सकता है, इन्होंने भी रससिद्धात पर अपने विचार प्रकट किए हों। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृशाश्व और शिलालिन् नामक दो नटसूत्रों का नामोल्लेख पाया जाता है।[४] महर्षि पाणिनि का समय खीष्ट पूर्व पचम शतक माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि ईसा से पाच सौ वर्ष पूर्व भी नाटकों का अभिनय तथा नाट्यशास्त्र भारत में विद्यमान था। अतएव रससिद्धात के विवेचन का ईसा पूर्व में होना निश्चित है।

अभी तक नंदिकेश्वर प्रभृति आचार्यों ने दृश्यकाव्य मे ही रससिद्धात की योजना की थी। केवल रूपकों मे सभावित आठ या नव रसों की आलोचना प्रत्यालोचना होती रही। श्रव्यकाव्य का क्षेत्र रस-सिद्धात-विवेचना की दृष्टि से अछूता था। ऐसा लगता है कि आचार्यों ने श्रव्यकाव्य की शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से उपेक्षा की हो। परतु आचार्यों का ध्यान भले ही इस ओर आकृष्ट न हुआ हो, हमारे प्राचीन वाल्मीकि और कालिदास जैसे रससिद्ध कवियों की दृष्टि इस दिशा मे निश्चित रूप से गई थी। वाल्मीकि ने 'शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवति नान्यथा' कह कर करुण रस का ही सकेत किया है। रससपृक्त काव्य के अस्तित्व एव उसके व्यापक प्रभाव की सूचना इससे मिलती है। महाकवि कालिदास ने भी अपने रघुवश नामक महाकाव्य में वाल्मीकि के दृष्टिकोण का समर्थन किया है।[५] भरत के बाद भामह, दडी, उद्भट, वामन प्रभृति आचार्यों ने श्रव्यकाव्य की समीक्षा अपने अपने सिद्धात ग्रंथों मे प्रस्तुत की। इस क्रम में उन्होंने काव्य में रसतत्व का उल्लेख भी किया है किंतु उनके हाथों रस को विशेष महत्व नहीं प्राप्त हुआ। उन्होंने रस को काव्य में एक गौण स्थान तो दिया परंतु प्रधानता अलंकारों की मानी। भामह ने रस को भी अलकारों के अंतर्गत माना और उनका नाम 'रसवत्' अलकार रखा।[६] इन्ही आचार्यों के

४. अष्टाध्यायी, ४।३।११०–१११।

५. रघुवंश, १४।७०।

६. काव्यालंकार, ३।६।

काव्यसंप्रदाय को अलंकार सप्रदाय घोषित किया गया है। भावों से युक्त अलंकारों का नाम 'प्रेय' अलकार रखा गया। तथापि महाकाव्य में रस की सत्ता इन्होने भी आवश्यक मानी। महाकाव्य में रस की उपादेयता की ओर लक्ष्य कर भामह ने कहा—'सभी रसो से युक्त महाकाव्य एक विशेष काव्यकृति है।[७]

दडी ने भी अलंकारों को ही काव्य-शोभा-वर्द्धक धर्म माना है।[८] परतु इनका अलंकार शब्द अत्यत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दडी के अलकार शब्द के अंतर्गत रस, रीति, अलकार आदि सारे शोभावर्द्धक काव्यतत्व समाविष्ट है। अतएव दडी के विवेचन मे भी रसतत्व को प्राधान्य न प्राप्त हो सका।

उद्भट ने भी भामह और दडी के अलकारवाद का ही समर्थन किया। इनके अनुसार भी पूर्ववत् अलकार काव्य का एक प्रधान तत्व और रस गौण धर्म स्वीकृत हुआ। भामह की भाँति इन्होंने भी रसवत् आदि अलकारों की कल्पना की। विशेषता इतनी भर थी कि जहाँ भामह ने रसयुक्त तीन ही अलकार माने थे—रसवत्, प्रेयस् और ऊर्जस्विन्, वहाँ इन्होने रसालकारो के चार भेद किए और समाहित नामक एक चतुर्थ रसालकार की भी उद्भावना की।

उपर्युक्त तीन आलकारिकों के बाद वामन की काव्यमीमासा का युग आया उक्त आलकारिकों से इनका इतना हो मतभेद है कि इन्होंने अलंकारों की अपेक्षा गुणों को काव्य मे अधिक महत्व प्रदान किया। रीति को इन्होंने काव्य की आत्मा माना तथा रस को गुणों के अवातर्गत ही रखा। रसयुक्त गुण को इन्होंने 'काति' के नाम से अभिहित किया।[९] कहने का तात्पर्य यह कि वामन के समय तक महत्व की दृष्टि से रस गौण ही रहा। अभी तक अलकारयुक्त या गुणयुक्त काव्य को ही सत्काव्य को सज्ञा मिली और रस को अलकारों या गुणों में रहने वाला एक धर्ममात्र स्वीकृत किया गया।

इसके बाद 'काव्यालकार' के रचयिता रुद्रट का काल आता है। सर्वप्रथम इन्होने ही रस को श्रव्यकाव्य मे मान्यता प्रदान की। इन्होंने रस को रूपकों के सकीर्ण कटघरे से निकाल कर काव्य के उन्मुक्त प्रागण मे समाविष्ट होने का अवसर प्रदान किया। रुद्रट ने अलकारों को शब्द और अर्थ को अलकृत करने वाला धर्म माना। अन्य अलकारवादियों की तरह इन्हे काव्य का शाश्वत परमतत्व नहीं स्वीकार किया। इतना ही नही, इन्होंने खुले शब्दों में उद्घोषणा की कि

७. वही, १।२१।

८. काव्यादर्श, २।१।

९. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, ३।२।१५।

काव्य में रस का होना परमावश्यक है।[१०] रसहीन काव्य की काव्यता को स्वीकार करने के पक्ष में आप नहीं थे वरन् आपके अनुसार वैसे नीरस काव्य को उपादेय अर्थ से युक्त शास्त्रमात्र कहना चाहिए। रससिद्धांत के विकासक्रम में इनकी विशेष देन यह भी हुई कि इन्होंने भरत निर्दिष्ट आठ रसों को बढा कर नौ कर दिया। साथ ही, इन्होंने यह भी स्वीकार किया कि सभी रसों के जितने भी व्यभिचारी तथा सात्विक भाव हैं, वे समुचित उद्भावक तत्वों को पाकर रसरूप में परिणत हो सकते हैं। इस प्रकार रुद्रट के अनुसार रस के अनेक प्रभेद किए जा सकते हैं। जो हो, इतना निश्चित है कि काव्य के क्षेत्र में रस को सर्वप्रथम इन्होंने ही महत्व प्रदान किया। अब रस 'नाट्यरस' ही नहीं रहा प्रत्युत 'काव्य-रस' भी हो गया।

अब ध्वनिकार आनंदवर्द्धन का उदय हुआ। इन्होंने ध्वनि के अंतर्गत ही रस को भी निरूपत किया। यद्यपि रस को ध्वनि के अंतर्गत डालकर इन्होंने उसे अतिव्यापक होने से वंचित रखा तथापि ध्वनि में रसध्वनि को ही इन्होंने सर्वोत्कृष्ट ठहराया। आनंदवर्द्धन ध्वनि की काव्यात्मकता में विश्वास करने वाले ध्वनिसंप्रदाय के प्रधान आचार्य एव प्रवर्तक हैं तथापि इन्होंने रस की काव्यात्मकता की ओर भी सकेत किया है।[११] फलतः ध्वनिसिद्धात के अतर्गत ही रससिद्धांत का भी निरूपण हो गया। साराश यह कि व्यग्यार्थमूलक ध्वनिसिद्धात के भीतर रस को उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ स्थान अवश्य मिला, किंतु पूर्ववर्ती या परवर्ती काल के 'रसात्मकम्' की व्यापकता उसे प्राप्त न हुई। रुद्रट की तरह आनंदवर्द्धन ने भी रूपकों एवं काव्यों में समान रूप से रसों की उपयोगिता एवं आवश्यकता स्वीकार की।

ध्वनि सप्रदाय के प्रवर्तित हो जाने के अनतर धनंजय, धनिक, प्रतिहारेंदुराज, भट्टनायक आदि विद्वानों ने ध्वनिसिद्धात का बड़ी दृढ़ता के साथ खडन किया। ये भामह और उद्भट आदि अलकारवादियों के विचारों के समर्थक थे। अतएव इन्होंने ध्वनि को भी अलंकारों के भीतर ही गतार्थ किया। इनका कहना था कि ध्वनि पर्यायोक्ति, श्लेष आदि अलकारों से पृथक् कोई अभिनव तत्व नहीं है। तथापि भामह, उद्भट आदि अलकारवादियों की अपेक्षा उपर्युक्त ध्वनि विरोधी आचार्यों की उदारदृष्टिता हम इस अश में मानते हैं कि इन्होंने रस को अलंकारों में सानिविष्ट नहीं किया प्रत्युत रस को अलंकारों से पृथक् काव्य के आत्मतत्व के

१०. तस्मात्तत्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्। —काव्यालंकार, १२।२।
११. ध्वन्यालोक, १।५।

रूप में ही निरूपित किया। कहने का आशय यह कि इन लोगों ने आनंदवर्द्धन के ध्वनि सिद्धात का विरोध तो किया पर काव्य मे रसतत्व की चमत्कारिता और उपादेयता विधिवत् स्वीकार की। इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा तो नहीं माना पर रसकी काव्यात्मकता का समर्थन किया। रसबोध के लिये ध्वनिवादियों की तरह व्यंजनाव्यापार की आवश्यकता भी स्वीकृत न की। इसके बदले तात्पर्यशक्ति के द्वारा रसप्रतीति की घोषणा की। धनंजय और धनिक प्रणीत 'दशरूपक' तथा 'दशरूपकावलोक' क्रमशः इन्ही विचारों से भरे पड़े हैं। भट्टनायक ने रसप्रतीति के लिये व्यंजना की जगह भोजकत्व व्यापार की उद्भावना की।

इसी खंडन मडन की दौड़ में उपर्युक्त ध्वनि विरोधी आचार्यों के समर्थ तथा युक्तियुक्त खंडन वाले अभिनवगुप्ताचार्य का समय आया। इन्होंने पुनः ध्वनि-सिद्धात की स्थापना की और आनदवर्द्धन की तरह उसी के भीतर रस सिद्धात का भी निरूपण किया। इन्होंने रस को असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के अंतर्गत स्वीकृत किया तथा साथ ही लक्षणामूला या संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि की भी काव्यात्मकता मान ली। अभिनवगुप्त ने रसध्वनिमात्र के समर्थक और वस्तुध्वनि के विरोधी भट्टनायक का खुले शब्दों में उपहास किया है।[१२] निष्कर्ष यह कि फिर से ध्वनिसिद्धांत के अतर्गत रससिद्धात का अनुमोदन हुआ। अभिनव की स्थापना के बाद एक बार पुनः ध्वनि विरोध का आदोलन वक्रोक्तिजीवितकार कुंतक तथा व्यक्तिविवेककार नैयायिक महिमभट्ट के नेतृत्व में चल पड़ा। एक ने रस के साथ ध्वनि को वक्रोक्ति मे गतार्थ किया और दूसरे ने अनुमिति में।[१३]

ध्वनिसिद्धात के खडन मंडन के लबे अरसे के बाद सरस्वतीकठाभरण और शृंगारप्रकाश जैसे अमूल्य काव्यशास्त्र सबधी ग्रंथों का प्रणयन हुआ। इन दोनों ग्रंथों के प्रणेता भोजराज थे। इन्होंने ध्वनि विरोधी तथा ध्वनि समर्थक पूर्ववर्ती आचार्यों की भाति ध्वनि, वक्रोक्ति आदि सिद्धातों के समर्थन एव विरोध मे अपनी शक्ति का अपव्यय नही किया। इस विवाद से तटस्थ रहकर इन्होंने वक्रोक्ति, रसोक्ति और स्वभावोक्ति नामक काव्य-त्रितय की कल्पना की। इन तीनों में भी रसोक्ति को आपने सर्वप्रधान माना।[१४] फलतः इनकी दृष्टि में रस को काव्य में अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ। इन्होंने भी काव्य को रसवत् कहा है पर भामह और दंडी के रसवत् अलंकार वाले अर्थ मे नहीं प्रत्युत इनके अनुसार इसका अर्थ है रसयुक्त होना।[१५]

१२. ध्वन्यालोक लोचन, १।४ की व्याख्या।
१३. अलंकारसर्वस्वविमर्शिनी, पृ० ८ और व्यक्तिविवेक, १।१।
१४. सरस्वतीकंठाभरण, ५।८।
१५. शृंगारप्रकाश, २, पृ० ३७०।

भोजराज ने रस का मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया। इन्होंने अहंकार, रस और शृंगार को पर्यायवाची माना--

रसोऽभिमानोऽहकारः शृंगार इति गीयते।
योऽर्थः तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, । ५।१

इनके अनुसार रसोत्पत्ति की जड है अहंकार और इसकी तीन अवस्थाएं हैं। तृतीय अवस्था में यह अहंकार ही रसरूप मे परिणत हो जाता है। रसों में भी शृंगार मौलिक रस है तथा उसी से अन्य रस उत्पन्न होते हैं। इस दार्शनिक रहस्य का सूत्र भरत के नाट्यशास्त्र मे भी मिलता है।[१६]

भोजराज के अनंतर मम्मट के रससिद्धात निरूपण का काल आता है। इन्होंने भी ध्वनि सप्रदाय के प्रवर्तक आनंदवर्द्धन का ही अनुसरण किया है। जहां तक रस-सिद्धात-निरूपण का प्रसंग है, इन्होंने कोई मौलिकता नही दिखाई। दोष रहित, गुण सहित, अलंकार सहित या रहित शब्दार्थ को इन्होंने काव्य माना। 'अर्थ' शब्द वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य (ध्वनि) इन तीनों का बोधक है। यद्यपि इन्होंने काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम नाम से तीन भेद किए हैं परतु इन तीनों में ध्वन्यर्थयुक्त काव्य को ही इन्होंने अधिक चमत्कारी होने के कारण उत्तमता प्रदान की। गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य का अस्तित्व इन्होंने भी ध्वनिकार की तरह अस्वीकृत न किया। ध्वनि के असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य नामक भेद के भीतर ही रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि का अतर्भाव किया। फलतः इनकी दृष्टि मे भी रस ध्वनि से पृथक् कोई वस्तु नही है और इसी से युक्त काव्य उत्तम भी है। परंतु एक मात्र रसध्वनि का अस्तित्व ही उत्तमता की कसौटी नही माना गया प्रत्युत वस्तुध्वनि और अलकारध्वनि से युक्त काव्य को भी उत्तम माना गया। पुनः काव्यप्रकाश के आठवें उल्लास मे गुणों और अलकारों के पार्थक्य एवं महत्व विमर्श के प्रसंग मे इन्होंने रस को काव्य मे अगी भी कहा।[१७] इस प्रकार एक ओर व्यग्यार्थयुक्त (रस जिसका एक प्रभेद मात्र है) काव्य को उत्तम मानना तथा दूसरी ओर रसमात्र को काव्य का अंगी या आत्मा मानना विरोधात्मक सा तो लगता है किंतु इतना निश्चित है कि इनकी दृष्टि मे रस काव्य का अति महत्वपूर्ण, उपादेय एवं प्राणभूत तत्व है।

काव्यप्रकाश में ध्वनि तथा रस का विश्लेषण विवेचन समीचीन रूप से हो

१६. नाट्यशास्त्र, २२।८९।
१७. काव्यप्रकाश, ८।६६।

जाने के बाद दो ही प्रसिद्ध कृतिया साहित्यशास्त्र मे देखी जाती हैं। उनमें एक है विश्वनाथ की　　　　और दूसरी है पंडितराज जगन्नाथ की रसगगाधर। विश्वनाथ ने काव्य में रस को सर्वाधिक मान्यता प्रदान की। रसात्मक वाक्य से भिन्न स्थल में इन्होंने काव्यत्व ही नही माना। रस को ध्वनि आपने भी माना है परंतु रसरहित वस्तुध्वनि या अलंकारध्वनि मे भी काव्यत्व आपको मान्य नहीं है।

'वाक्य रसात्मक काव्यम्' की व्याख्या में आपने काव्य मे रस की अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित की है। इस सादर्भ में मम्मट की तरह आपका विचार उलझा हुआ नहीं है। ये स्पष्टतः एकमात्र रस की काव्यात्मकता मे विश्वास रखते हैं। एक और विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि विश्वनाथ ने चमत्कार या चित्तविद्रुति को रस का सार माना है और इसी के आधार पर अद्भुत रस को प्रमुख तथा अन्य रसों को अद्भुत के अग स्वीकृत किया है। यह इनका वैयक्तिक विचार ही नहीं था प्रत्युत कौलिक था। इस प्रसग में इन्होंने अपने वृद्ध प्रपितामह श्रीमन्नारायण के विचारों को उद्धृत किया है जिसमे स्पष्ट रूप से अद्भुत को मुख्य और अन्य रसों को गौण माना गया है।[१८] भवभूति ने इसी प्रकार करुण को मुख्य रस तथा शेष रसों को गौण मानते हुए कहा था—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्,
आवर्त्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान्,
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥[१९]

—जैसे जल परिस्थितिवश भ्रमि, बुलबुले, तरग आदि विभिन्न रूपों को प्राप्त करता है परंतु वे उस जल से अपृथक् उसके विकार मात्र हैं, उसी तरह काव्य या नाटक मे एक मात्र प्रमुख रस करुण ही है और वह निमित्तभेद से शृंगार, वीर, हास्य आदि अनेक रूपों को प्राप्त कर लेता है।

विश्वनाथ के इस उग्र रसवाद का विरोध अठारहवी शताब्दी मे पडितराज जगन्नाथ ने किया और उन्होने फिर से ध्वनिकार की ही स्थापना को सर्वमान्य घोषित किया। विश्वनाथ के 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' को सकीर्ण कहकर 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' के द्वारा काव्य को परिभाषित किया और इस प्रकार भाव के अतिरिक्त कल्पना और बुद्धितत्व को काव्य मे उचित स्थान दिया। इन्होंने काव्य के चार भेद किए—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम।

१८. साहित्यदर्पण, ३।३ (वृत्ति)।
१९. उत्तररामचरित, ३।४७।

मम्मट प्रतिपादित गुणीभूत व्यंग्य नामक मध्यम काव्य को भी इन्होंने उत्तम ही माना। इस प्रकार ध्वनिवादी होते हुए भी इन्होंने रस के महत्व को मुक्तकठ से स्वीकार किया और उसी का विस्तृत विवेचन अपने रसगगाधर नामक ग्रंथ में प्रस्तुत किया। जगन्नाथ के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि और ध्वनि की आत्मा रस है। अतएव रस की सर्वोत्कृष्टता स्वतः सिद्ध है। जगन्नाथ के अनंतर भानुदत्त या भानुमिश्र ने दो रसग्रंथ लिखे—रसतरंगिणी और रसमंजरी। इनमें न तो विवेचन की गंभीरता है और न सैद्धातिक नवीनता। विषय का सरलता के साथ प्रतिपादन ही ग्रंथकार का मुख्य उद्देश्य है। तथापि शृंगार की रसराजता पर बल इन्होंने अवश्य दिया है।

इस प्रकार ईसापूर्व प्रथम शतक के भरत मुनि से लेकर अठारहवीं सदी के पंडितराज जगन्नाथ के काल तक रससिद्धात का विकास कभी स्वतंत्र रूप में और कभी ध्वनिसिद्धात के अतर्गत होता रहा। फलतः रसात्मक काव्य की सर्वोत्कृष्टता ध्वनिवादियों और रसवादियों दोनों को मान्य हुई। जगन्नाथ के बाद रससिद्धात पर सस्कृत में कोई भी उल्लेखनीय विवेचन ग्रंथ नही लिखा गया और इस परंपरा का स्त्रोत संस्कृत के काव्यशास्त्र में अवरुद्ध सा हो गया।

३. रीतिकालीन काव्यशास्त्र

पृष्ठभूमि—हिंदी काव्य की धारा १०५० विक्रम सवत् से ही विभिन्न प्रवृत्तियों का सभार लिए प्रवाहित होती चली आ रही थी। पर अब तक इसे वह प्रतिष्ठा प्राप्त नही थी जो सस्कृत काव्य को प्राप्त थी। संस्कृत साहित्य क्रमशः ह्रासोन्मुख था और जगन्नाथ के बाद कोई वैसी प्रतिभा दृष्टिगोचर नहीं हुई। जो दो-चार कवि और आचार्य सस्कृत मे पैदा हुए भी, वे महत्वपूर्ण प्रमाणित नही हुए। इधर अकबर के शासनकाल में हिंदी साहित्य का पूर्ण विकास हुआ। एक ओर अवधी (हिंदी की एक बोली) के माध्यम से रामचरित मानस जैसे अमूल्य ग्रंथरत्न के प्रणेता तुलसीदास का आविर्भाव हुआ तो दूसरी ओर 'सूरसागर' के सरस प्रवाह में बहा ले जाने वाले सूरदास ने ब्रजभाषा के माध्यम से हिंदी साहित्य के भंडार की वृद्धि की। परिणामतः सामान्य जनता के अतिरिक्त शिष्ट एवं शिक्षित जन भी भाषा काव्य को समादर की दृष्टि से देखने लगे। भारतीय शासन के   के अनतर तो पुनः रईसों, अमीरों और छोटे छोटे राजाओं के दरबारों की ही शोभा कविगण बढ़ाने लगे। ये कलाप्रेमी तो थे पर संस्कृत साहित्य और शास्त्र के ज्ञान से विहीन थे। अतएव इन कलाप्रेमियों के मनोरंजन के लिये विशेषतः और हिंदी काव्यप्रेमी जनों के लिये सामान्यतः काव्यशास्त्रों की रचना करना हिदी के कवियों के लिये आवश्यक सा हो गया। ऐसी ही परिस्थिति में हिंदी काव्यशास्त्र के प्रणयन का आरभ हुआ। एक ओर

भी कारण हुआ। वह यह कि मध्यकाल मे अनेक परिवार काव्यजीवी थे। उनमें कवि बनने की प्रतिभा चाहे न भी रही हो, पर जीविकोपार्जन के लिये काव्य-रचना करना उनका धधा था। ऐसे कवियशःप्रार्थी जनों के लिये भी कतिपय आचार्य भाषा के माध्यम से सस्कृत के काव्यशास्त्रीय ज्ञान को प्रस्तुत कर देते थे जिससे छद, अलंकार, रस, नायिकाभेद आदि काव्यागों की जानकारी के आधार पर वे काव्यप्रणयन कर सके।[२०] इन सारे कारणों के परिणामस्वरूप जब दो चार काव्यशास्त्रीय ग्र थ हिंदी मे प्रस्तुत हो गए, फिर तो उनका अंबार लग गया। 'गतानुगतिको लोकः–इस न्याय के अनुसार जितने भी कवि ख्यातिप्राप्त होना चाहते थे, उनके लिये यह आवश्यक हो गया कि वे काव्यरचना के साथ ही लक्षणग्रंथ भी लिखे। अतएव कुछ ने तो स्वतत्र काव्यग्रंथ रचे और फिर स्वतत्ररूप से लक्षणग्रंथ भी लिखे जिनमे उदाहरण भी उनके अपने ही हैं। पर कुछ ऐसे भी कवि या आचार्य हुए जिन्होने लक्षणग्रंथ प्रस्तुत करने के क्रम म ही अपनी कवित्वशक्ति का परिचय दिया। लगभग दो सौ वर्षों तक (संवत् १७००–१६०० विक्रम सवत्) हिंदी मे इसी तरह के साहित्य की सर्जना हुई। अतएव इस युग को इतिहासकारों ने प्रवृत्ति के आधार पर 'रीतिकाल' कहा है। काव्यशास्त्र रचने की परिपाटी जो हिंदी के रीतिकाल में चली, वह रूप बदल कर आज तक प्रचलित है। जो कार्य पहले पद्य के माध्यम से होता था, वही आज गद्य के माध्यम से हो रहा है। आज भी आलोचना ग्रंथों के रूप में, प्राचीन लक्षण ग्रंथों की टीकाओं के रूप मे, शोधप्रबंधों के रूप म तथा फुटकर लेखों के रूप मे हिंदी की काव्यशास्त्रीय परपरा जीवित है। यह बात अलग है कि पाडित्य की प्रखरता, शिक्षा के विस्तार, विदेशी साहित्यों का संपर्क और गद्यात्मक माध्यम के कारण अर्वाचीन काव्यशात्रीय ग्रंथों में विवेचना की मौलिकता रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्र थों की अपेक्षा अधिक है। जो हो, उक्त पृष्ठभूमि के साथ ही हिंदी काव्यशास्त्र की अवतारणा हुई।

उद्भव—अब प्रश्न यह है कि हिंदी काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य किसे माना जाय? इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल ने कृपाराम की हिततरंगिणी को हिंदी का आदि काव्यशास्त्रीय ग्र थ स्वीकार किया है। कृपाराम का समय शुक्ल जी के अनुसार सवत् १५६८ है। कृपाराम, मोहनलाल मिश्र (शृंगारसागर के प्रणेता) और करनेस कवि (कर्णाभरण, श्रुतिभूषण नामक अलंकार ग्र थों के लेखक) के द्वारा

२०. हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३८।

रसनिरूपण किए जाने के पश्चात् अनेकाग-निरूपक केशव के उदय काल को शुक्ल जी ने स्वीकृत किया है। इसके विपरीत 'शिवसिह सरोज' के अनुसार हिंदी काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य पुष्य नामक कवि है जिसने सातवी शताब्दी मे अपभ्रंश मे एक अलकारग्रंथ लिखा था। उक्त ग्रंथ की अनुपलब्धि के कारण विद्वानों को यह तथ्य मान्य नहीं है, पर शात चित्त से विचार करने पर यह बात अविश्वसनीय भी नही प्रतीत होती है। यह सच है कि हिंदी साहित्य अनेक दिशाओ में अपभ्रंश साहित्य का ऋणी रहा है—वर्ण्य विषय, शैली, प्रवृत्ति, छद आदि की परपरा प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य से ही हिदी में आई है। कबीर आदि निर्गुण कवियो के काव्यविषय को अपभ्रंश के सिद्धसाहित्य ने प्रभावित किया है। जायसी तथा अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की कथावस्तु की प्रेमवर्णना मे मूलाधार जैनाचार्यो द्वारा लिखी अपभ्रंश कथाओ में पाया जाता है। जायसी और तुलसी आदि की दोहे-चौपाई शैली भी अपभ्रंश काव्य ग्रंथों से ही हिदी में प्रवर्तित हुई। अतएव हिदी की साहित्यिक प्रवृत्तियो की परपरा का अनुसधान करते हुए हम भले ही अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य मे पहुँच जाय, किंतु काव्यशास्त्र की वैसी कोई स्पष्ट परपरा हमे प्राकृत और अपभ्रंश मे उपलब्ध नही होती है। हिदी के रीतिग्रथों का प्रत्यक्ष सबध सस्कृत काव्यशास्त्र से ही है। तथापि काव्यशास्त्र की एक क्षीण धारा जो अपभ्रंश से आई, उसका आशिक प्रभाव भी हिदी काव्यशास्त्र पर माना जा सकता है। विशेषतः लक्षण और उदाहरण साथ-साथ रचने की परपरा जो हिदी के रीतिकाल मे आई, वह अपभ्रंश का ही प्रभाव है। इस प्रसग मे अपभ्रंश मे रचे कतिपय काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का नाम लिया जा सकता है—यथा, सिद्ध शाति या रत्नाकर शाति (सन् १००० ई०) का लिखा छदोरत्नाकर, आचार्य हेमचद्र सूरि प्रणीत (सन् १०८८–१११६ ई०) प्राकृत व्याकरण, छंदोशासन और देशी नाममाला कोश। जैनाचार्य नयनंद (११ वी शताब्दी विक्रमीय) द्वारा लिखा हुआ 'सुदर्शनचरित्र' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रथ भी उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में धार्मिक विषयों के उल्लेख के अलावा ऋतु, नखशिख, शृंगार और नायिका-भेद आदि भी वर्णित पाए जाते हैं। उक्त अपभ्रंश ग्रथों को हिंदी के काव्यशास्त्रीय ग्रथ मान लेने पर हिदी काव्यशास्त्र का उद्भव भी वही से मानना होगा। नही तो कम से कम इन ग्रंथों का प्रभाव या प्रेरणा तो हिंदी की ब्रजभाषा मे लिखे काव्यशास्त्रीय ग्रंथो पर स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अपभ्रंश को यदि हिदी साहित्य का अग न माने तो हिंदी काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य के रूप में हिततरगिणीकार कृपाराम को ही स्वीकार करना होगा। हिततरगिणी की रचना विक्रम संवत् १५९८ की माघ शुक्ल तृतीया को

हुई थी। यों स्वय कृपाराम ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि मैंने तो दोहों में शृंगार रस का वर्णन किया है पर मेरे कई पूर्ववर्ती आचार्यों और कवियों ने बड़े बड़े छंदों (कवित्त-सवैया आदि) मे रसरीति का निरूपण किया है। इससे ज्ञात होता है कि कृपाराम के पूर्व भी कतिपय काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन हो चुका था, पर ग्रंथों की अनुपलब्धि के कारण हिततरगिणी को ही हिंदी का आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथ स्वीकार करना पडेगा। इस ग्रंथ का आधार भानुकृत रसतरगिणी है क्योंकि अवस्थाओं के अनुसार नायिकाओं के दस भेद हिततरगिणी मे प्रतिपादित किए गए है। ऐसे भेद रसतरंगिणी मे ही पाए जाते हैं। यद्यपि कृपाराम ने अपने ग्रंथ मे भरत के नाट्यशास्त्र को आधार घोषित किया—'कृपाराम यो कहत है, भरत ग्रंथ अनुमानि', पर नाट्यशास्त्र में उक्त दस भेद उपलब्ध नही है बल्कि इनके स्थान पर अवस्थाओं के अनुसार नायिकाएँ आठ प्रकार की बताई गई हैं। डा० रामशंकर शुक्ल ने अपने 'एवोल्यूशन आव् हिंदी पोएटिक्स' मे करनेस बदीजन की हिततरगिणी का उल्लेख किया है और उसका समय १२०० ई० के लगभग बताया है। पर यह ग्रंथ आज तक किसी के देखने मे नही आया है। संभवतः कृपाराम की हिततरगिणी को ही इन्होंने करनेसप्रणीत मान लिया है।

हिततरगिणी के पश्चात् 'साहित्य लहरी' को कतिपय विद्वानों ने हिंदी काव्यशास्त्र का दूसरा ग्रंथ स्वीकार किया है। साहित्य लहरी के प्रणेता और उसके रचनाकाल के सबंध मे मत वैविध्य पाया जाता है। शुक्ल जी ने इसे सूरदास की रचना माना है तथा इसका रचनाकाल सवत् १६०७ माना है। इस ग्रंथ के 'मुनि पुनि रसन के रस लेष' वाले पद का 'रसन' शब्द विवाद का विषय बना हुआ है। इसका अर्थ शून्य, एक और दो किया जाता है। फलतः भिन्न भिन्न व्याख्याकारों के अनुसार साहित्य लहरी का रचनाकाल क्रमशः सवत् १६०६, १६१७ और १६२७ प्रमाणित होता है। इसकी अतिशय शृंगारिता को देखकर कुछ विद्वानों को इसे सूरदास की रचना मानने मे सदेह होता है। पर उन्हे यह जानना चाहिए कि मीरा, नद, तुलसी आदि अनेक भक्त कवियों के काव्य में अतिशय शृंगारिकता भक्ति के आवरण में व्याजित हुई है। स्वयं सूरदास ने सूरसागर में ऐसे अनेक पद लिखे हैं। यह परपरा भारतीय साहित्य मे अत्यत प्राचीन काल से चली आ रही है। भक्ति के नाम पर शृंगार की धारा गीतगोविंद-कार जयदेव और विद्यापति के युग से ही चली आ रही है। फिर भी यदि हम साहित्य लहरी को सूरदास की कृति न भी मानें तथापि इसे हिंदी का अपर रीतिग्रथ मानने में तो किसी तरह की आपत्ति हो ही नही सकती।

सूरदास की साहित्य लहरी के पश्चात् अष्टछाप के दूसरे उल्लेखनीय कवि

नददास ने भी रूपमंजरी, रसमंजरी और विरहमंजरी नामक काव्यशास्त्रीय रचनाएं प्रस्तुत की। रसमजरी मे इन्होंने नायिकाभेदो और उनके उदाहरणों को एक साथ मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि नायिकाओं का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट हो गया है। विरहमजरी मे वियोगशृंगार का निरूपण और उसके भेदों का उल्लेख है। इसमे शृगार रस के भेद—सभोग और विप्रलभ किए गए हैं। पुनः विप्रलभ शृंगार को प्रत्यक्ष, पलकातर, वनातर और देशांतर नामक चार प्रभेदों मे बाट दिया गया है। रूपमंजरी तो प्रेमाख्यानक काव्य है पर इसके प्रेमवर्णन की शैली मे रीत्यात्मकता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। यों नंददास एक भक्त थे, आचार्य नही पर उनकी उपयुक्त रचनाओ में रीत्यात्मक प्रवृत्ति एवं आशिक रीतिनिरूपण नितात स्पष्ट हैं। नददास का रचनाकाल संवत् १६२० के लगभग मानना जाहिए।

नंददास के अनंतर रीति ग्रंथ प्रस्तुत करने वाले आचार्यों में 'रहीम' का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अवधी मे सर्वप्रथम 'वरवानायिका' नामक रीतिग्रंथ रचा। इसमें दोहा छंद में नायिकाओं का निरूपण किया गया है। इस ग्रथ का रचनाकाल अनुमानतः १६४० विक्रम सवत् है। इसी समय के आसपास रचे गए मोहनलाल मिश्र के शृगारसागर और करनेस कवि द्वारा लिखित कर्णाभरण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण नामक तीन अलंकारग्रथों के सकेत इतिहास मे मिलते हैं। ये सभी ग्रंथ ब्रजभाषा में ही रचे गए थे। मिश्रबधुओं के अनुसार करनेस कवि का संपर्क अकबरी दरबार के साथ था। अकबरी दरबार के अन्य हिंदी कवियों मे गग, मनोहर और गंगाप्रसाद आदि भी ऐसे कवि थे जिनकी रचनाओं मे रीत्यात्मकता पाई जाती है। इसी समय के आसपास मुनिलाल और बलभद्र नामक दो अन्य रीतिकवि भी हुए। मुनिलाल ने रामप्रकाश नामक ग्रथ रचा था और बलभद्र ने नखशिख और दूषणविचार नामक दो ग्रंथ रचे। ग्रथों की अनुपलब्धि के कारण इनके प्रतिपाद्य विषयों के सबंध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना नितांत कठिन है।

उक्त सभी आचार्यों को (कृपाराम से लेकर मुनिलाल तक, समय—१५८६ सवत् से १६४२-४५ सवत् पर्यंत) हिंदी काव्यशास्त्र का आरभक ही मानना चाहिए। काव्यानुशीलन का समर्थ एवं प्रौढ़ अभिनिवेश इनमें से किसी भी आचार्य मे नही पाया जाता है। इनका श्रेय मात्र इतना है कि युग की माँग के अनुसार इन्होंने व्रजभाषा हिंदी में काव्यशास्त्रीय विषयों का निरूपण या प्रतिपादन (चाहे जैसा भी हुआ हो) कर दुर्बोध शास्त्रीय ज्ञान को सर्वसाधारण जनों के लिये सुलभ बना दिया।

हिंदी काव्यशास्त्र की इसी पूर्वपीठिका पर केशवदास का जन्म संवत् १८१७

में हुआ। इन्होंने तीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचे—१-रसिकप्रिया, २-कविप्रिया, ३-छंदमाला। रसिकप्रिया की रचना आपने रसिकों के लिये की थी। इसमें रसरीति का निरूपण किया गया है। आचार्य केशव इसमें शृंगार की रसराजता सिद्ध करना चाहते हैं। अतएव अन्य रसों की चर्चा को चलता कर देते हैं और मात्र शृंगार का सांगोपाग प्रतिपादन करने लग जाते हैं। 'कविप्रिया' अधिक विस्तृत आधारभूमि पर खडी की गई है। इस ग्रंथ के आरभ मे स्वयं केशव ने स्वीकार किया है कि काव्यशिक्षार्थियों के लिये यह ग्रंथ रचा गया है। एक साथ ही इस ग्रंथ मे इन्होंने कविदूषण (काव्यदोष), कविव्यवस्था (कवियों के भेद), कविप्रसिद्धि, कविरीति, अलकार, काव्यभेद आदि सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों एवं विषयों का प्रतिपादन किया है। 'छंदमाला' मे भापा कवियों को शिक्षा देने के लिये एकाक्षर से लेकर २६ अक्षरों वाले ७६ वर्णिक छदों के लक्षण एव उदाहरण रचे गए हैं। केशव के पास सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रगाढ़ ज्ञान था और थी काव्य रचने की अद्भुत प्रतिभा। अतएव कवित्व और आचार्यत्व के मणिकाचन योग से इन्होंने हिंदी मे काव्यशास्त्रीय ग्रथों के प्रणयन का आरंभ किया। पर यदि केशव ने अपने आचार्यत्व और कवित्व के क्षेत्रों को पृथक् पृथक् रखा होता तो हिंदी काव्यशास्त्र की रूपरेखा आज कुछ और होती। आचार्यत्व और कवित्व के समन्वयन से लक्षणोदाहरणात्मक जो ग्रंथ इन्होंने प्रस्तुत किए, उन्हीं की नकल समस्त रीतिकाल में होती रही। नतीजा यह हुआ कि ये रीतिकालीन आचार्य कवि सच्चे अर्थ में न आचार्य ही बन पाए और न कवि ही। केशव प्रवर्तित रीतिधारा से पृथक् होकर दो चार कवियों ने केवल कविताएँ रचीं और उन्हे कविकर्म में सफलता एवं श्रेय भी मिले। विहारी, घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर आदि कुछ एक कवि इसी प्रवृत्ति की उपज हैं।

विकास—कृपाराम से लेकर रामप्रकाश के रचयिता मुनिलाल तक हिंदी काव्यशास्त्र का बीजवपन ही हुआ। केशव के ग्रंथों मे आकर वह भलीभाँति अंकुरित हुआ। १६५८ वि० सं० (केशव का समय) के अनंतर लगभग १७०० वि० सवत् में जब चिंतामणि त्रिपाठी ने काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश, पिंगल, रसमजरी आदि ग्रंथों का प्रणयन किया तो हिंदी काव्यशास्त्र पूर्ण विकास की अवस्था को प्राप्त हो गया। फिर यह क्रम तो लगभग दो सौ वर्षों तक चलता रहा। केशव और चिंतामणि के बीच का व्यवधान हाल तक विद्वानों को खलता रहा है। शुक्लजी प्रभृति इतिहासकारों ने काव्यशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इस काल खंड को सर्वथा अंधकाराच्छन्न ही माना है। वस्तुस्थिति आज भी वैसी ही है। पर कतिपय नगण्य रीतिग्रंथों का अब पता चला है, जो इसी कालखंड में रचे गए थे। इनमे से कुछ एक तो मात्र रीतिकालीन प्रवृत्तियों से

युक्त काव्यकृतियां मात्र हैं और अन्य में आशिक रीतिनिरूपण भी है। संवत् १६५० के पश्चात् मोहनदास ने बारहमासा और हरिराम एव बालकृष्ण ने क्रमशः छंदरत्नावली और रसचंद्रिका जैसी पिंगल विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं। सवत् १६६० में मुबारक ने और सवत् १६७६ मे लीलाधर ने नखशिख विषयक पुस्तकें लिखी जिनमें मुबारक प्रणीत अलकशतक और तिलशतक प्रसिद्ध रचनाएं हैं। सवत् १६८८ में सुंदर कवि ने सुंदरश्रृंगार का प्रणयन किया। इस ग्रंथ का उल्लेख चिंतामणि ने अपनी 'श्रृंगारमंजरी' नामक पुस्तक में किया है। इस प्रकार केशव और चिंतामणि के बीच की कड़ी भी जुटी हुई है। इन दोनों आचार्यों के बीच के लगभग ५० वर्षों के कालखंड को काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से सर्वथा शून्य नहीं कहा जा सकता है।

विक्रम सवत् १७०० के लगभग चितामणि के द्वारा काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के प्रणयन के अनंतर तो फिर व्रजभाषा हिंदी मे रीतिग्रंथों की बाढ़ आ गई। आचार्यम्मन्य कवियों के द्वारा काव्यशास्त्रीय विभिन्न तत्वों और अगों का निरूपणक्रम चलता रहा। इन ग्रंथकारों और ग्रंथों की संख्या विपुल है। अभी भी कई ऐसे ग्रंथकार है जिनकी कृतियाँ अनुपलब्ध हैं। उनके ग्रंथ व्यक्तिगत पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। अथवा अनपढ व्यक्तियों के घरों में दीमक का भक्ष्य बन रहे हैं। अभी भी इन्हे खोज कर प्रकाश मे ले आने की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी है।

आचार्य चिन्तामणि के बाद सवत् १६६१ में तोष ने सुधानिधि नामक रसग्रंथ रचा। इस ग्रंथ में नवरसों, भावों, भावोदय आदि वृत्तियों और नायिकाभेदों का समुचित प्रतिपादन है। जोधपुर के नरेश महाराज जसवंत सिंह ने भाषाभूषण नामक अलंकारग्रंथ अठारहवी सदी के प्रारभ मे लिखा। यद्यपि इसमें चंद्रालोक की पद्धति पर मुख्यतः अलकारों का ही सोदाहरण प्रतिपादन दोहों में किया गया है, पर ग्रंथ के प्रथम प्रकरण मे यत्किंचित् रसनिरूपण भी है। इसी समय के आस पास चितामणि के भाई मतिराम, भूषण और जटाशकर ने भी रीतिग्रंथों की रचना की। मतिराम ने रसराज, ललितललाम, साहित्यसार, अलंकारपंचाशिका और लक्षणश्रृंगार नामक पॉच काव्यशस्त्रीय ग्रंथ रचे थे। इनमे से रसराज, साहित्यसार और लक्षणश्रृंगार तो रसशास्त्रीय ग्रंथ हैं, शेष दो अलंकारग्रंथ है। रसराज मे रीतिकालीन परपरा के अनुसार समस्त अगों के साथ रसराज श्रृंगार का निरूपण किया गया है। साहित्यसार मे केवल नायिकाभेद का उल्लेख है और लक्षणश्रृंगार में भावों और विभावों का वर्णन है। भूषण वीर रस के सुप्रसिद्ध कवि होने के साथ ही आलंकारिक भी थे। इन्होंने संवत् १७३० के आस पास 'शिवराजभूषण' नामक एक अलंकारग्रंथ रचा।

चिंतामणि के भाइयों में जटाशंकर ने प्रायः कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ नहीं रचा।

इसी समय के आसपास आचार्य कुलपति मिश्र का आविर्भाव हुआ। इन्होंने 'रसरहस्य' और गुण-रस-रहस्य' नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचे। रसरहस्य सवत् १७२७ मे रचा गया था। इसके आठ वृत्तातो मे काव्य के समस्त अंगों का निरूपण है। कुलपति सच्चे अर्थ मे आचार्य प्रतीत होते है, क्योकि विभिन्न संस्कृत के आचायो के लक्षणों को अपनी 'बचनकाओं' में समीक्षात्मक ढंग से प्रस्तुत करने के बाद ही ये अपने लक्षणो को सप्रमाण निर्धारित करते पाए जाते हैं। सुखदेव मिश्र भी इसी समय के आचार्य हैं। इन्होने संवत् १७२० से लेकर संवत् १७६० के बीच अनेक ग्र थ रचे। वे है—वृत्तविचार, छदविचार, रसार्णव, शृ गारलता, पिंगल और फाजिल अलीप्रकाश। इनमें से वृत्तविचार, छंदविचार और पिगल ये तीन ग्रंथ तो छद संबधी है। शृंगारलता का परिचय अभी तक अप्राप्त है। रसार्णव में रसों का सामान्यतः और विशेषतः रसराज शृंगार और नायक-नायिका-भेदों का विवरण है। सुखदेव के बाद रामजी, गोपालराय बलिराम, बलवीर, कल्यानदास प्रभृति अनेक कवियों ने रीति ग्रंथों की रचना की पर वे प्रतिपाद्य विषयवस्तुओं की दृष्टि से सर्वथा अमहत्वपूर्ण है।[२१]

अब हिंदी काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य देव का रचना काल आया। इनका रचनाकाल सवत् १७४६ से लेकर सवत् १७६० तक माना जाता है। इनके द्वारा रचे गए ७२ ग्रंथों की चर्चा शुक्ल जी ने की है। इनमे से २५ ग्र थों को तो रीतिग्रंथ बताया जाता है। पर प्रसिद्धि की दृष्टि से तथा काव्यशास्त्रीय प्रतिपादन के महत्व की दृष्टि से ये चार ग्र थ ही उल्लेखनीय हैं--रसविलास, भवानीविलास, भावविलास और काव्यरसायन। रसविलास इनके अंतिम काल की रचना है। इसे संवत् १७८३ में रचा गया था। रसविलास और भवानीविलास मे रसनिरूपण है, भावविलास मे रसो और अलकारो का उल्लेख है तथा काव्य रसायन मे काव्य के विभिन्न अगो का प्रतिपादन किया गया है।

अब तक हिंदी साहित्य में रीतिपरंपरा बद्धमूल सी हो गई। सवत् १७५० से सवत् १६०० तक का काल रीतिसाहित्य का उत्कर्ष काल है। इस अवधि में लक्षणग्रंथों के प्रणयन के बिना तत्कालीन साहित्य जगत् में प्रसिद्धि पाना नितात कठिन हो गया था। अतएव लक्षण-ग्रंथ-प्रणेताओं की विपुल संख्या सामने आई। इनमें उल्लेखनीय आचार्य ये हुए—सूरति मिश्र, कुमारमणि

२१. शुक्ल, हि० सा० का इति०, पृ० २६४।

भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, रसलीन, उदयनाथ, भिखारीदास, रतनकवि, करन कवि, पद्माकर, रसिकगोविद, प्रतापसाहि आदि ।

आगरे के सूरति मिश्र की कृतियों के नाम है - अलंकारमाला, रसरत्नमाला, रसग्राहकचंद्रिका, काव्यसिद्धात, रसरत्नाकर आदि । इन्होने ब्रजभाषा गद्य मे केशव की कविप्रिया और रसिकप्रिया पर टीकाए भी लिखी थी। इन टीकाओं के नाम हैं—जोरावर प्रकाश और रस-ग्राहक-चद्रिका जो अभी भी हस्तलिखित रूप मे रमणलाल चौधरी, बाजार कोसी (मथुरा) के पास सुरक्षित है।[२२] यों सूरति मिश्र के सभो ग्रंथ रस और अलकार से सबद्ध है, पर इनके ग्रथो मे काव्यसिद्धात सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसम काव्य के समस्त अगों का एकत्र निरूपण किया गया है। कुमारमणि भट्ट ने रसिकरसाल नामक ग्रंथ सवत् १७७६ में लिखा था। इसमे काव्यप्रकाश के आधार पर काव्य के सभो अगों का निरूपण किया गया है।

हिदी के इसी उत्कर्ष काल मे आचार्य श्रीपति का उदय हुआ। इन्होंने भी अनेक लक्षण ग्र थ लिखे—कविकुलकल्पद्रुम, रससागर, अनुप्रासविनोद, विक्रम-विलास, सरोजकलिका, अलकारगंगा और काव्यसरोज। इन सभी ग्रंथों मे काव्य-सरोज अधिक महत्वपूर्ण है। इसकी रचना १७७७ में हुई थी। इनका एकमात्र यही ग्रंथ उपलब्ध भी है। श्रीपति ने इस ग्रंथ के दोषदल (दोषप्रकरण) मे अन्य कवियों और आचार्यों की रचनाओं को उदाहृत किया है। सवत् १७८६ मे रसिक सुमति ने अलंकारचंद्रोदय की रचना की जिसमें कुवलयानंद की पद्धति पर अलंकारों का प्रतिपादन किया गया है। तदनतर सवत् १७६४ मे आचार्य सोमनाथ ने रसपीयूषनिधि नामक लक्षणग्रंथ रचा। इस ग्रंथ में एक साथ ही पिंगल, काव्यलक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, रीति, गुण और दोष आदि सभी काव्यांगों का निरूपण किया गया है। यह एक विशाल ग्र थ है और इतिहासकारो ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसके बाद गोविंद के कर्णा-भरण की रचना सवत् १७६७ मे हुई। इसमें मात्र अलंकारों के लक्षण उदाहरण हैं। रसलीन ने सवत् १७६८ में रसप्रबोध की रचना की जिसमे नौ रसों और उनके उपादानों का परंपरागत ढंग से विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। रघुनाथ ने काव्यकलाधर और रसिकमोहन नामक दो रीतिग्रंथ रचे। इन दोनो में रसनिरूपण ही है। रसिकमोहन मे सभी रसो का उल्लेख है और काव्यकलाधर में नायिका-भेद पर विशेष जोर दिया गया है।

२२. डा० विजयपाल सिंह, केशव और उनका साहित्य, १६६१ ई०, पृ० ६८।

इसी समय हिंदी काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भिखारीदास (या दास) का प्रादुर्भाव हुआ। दासरचित काव्यशास्त्रीय कृतियो मे इतनी तो निर्विवाद हैं—रससाराश, छदार्णव, पिगल, काव्यनिर्णय। इन सभी ग्रंथो मे भी काव्य-निर्णय अधिक प्रसिद्ध है। इसमें काव्य के सभो अगों का निरूपण है। काव्य-सिद्धांत की मान्यता की दृष्टि से दास ध्वनिवादी प्रतीत होते हैं। काव्यनिर्णय के छठे उल्लास मे उन्होंने ध्वनि का बड़ा स्पष्ट एव मार्मिक निरूपण किया है। दूलह कवि, बैरीसाल, समनेस और ऋषिनाथ प्रभृति आचार्य-कवियों ने भी रीति ग्रथ रचे, पर वे उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। अलकारनिरूपण की दृष्टि से दूलह प्रणीत कविकुलकठाभरण एक प्रसिद्ध रचना है। रतन कवि ने इसी समय के आसपास दो ग्रंथ रचे थे—फतेहभूषण और अलंकारदर्पण। फतेहभूषण मे काव्य के विभिन्न अगों का प्रतिपादन है, पर अलंकारदर्पण मे केवल अलंकारों के लक्षणों और उदाहरणों का विवरण है। शुक्ल जी के अनुसार इन दोनों ग्रंथों का रचनाकाल संवत् १८३० है। इसके अनतर जनराज का कवितारसविनोद, उजियारे कवि के जुगुलरसप्रकाश और रसचंद्रिका, यशवत सिह का शृंगार शिरोमणि, जगत सिह का साहित्यसुधानिधि आदि रीतिग्रंथों की रचना हुई।

रीतिकालीन काव्यशास्त्र के अंतिम मूर्धन्य आचार्य पद्माकर हुए। शुक्ल जी ने इनके आचार्यत्व की अपेक्षा कवित्वशक्ति और कल्पनानैपुण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[२३] पद्माकर के जगद्विनोद को उन्होंने मतिराम के रसराज की कोटि की रचना माना है। पद्माकर की रचनाओं में काव्यशास्त्रीय कृतिया दो ही हैं—पद्माभरण और जगद्विनोद। जगद्विनोद सवत् १८६७ के आसपास की रचना है और इसमे रस, भाव, नायिकाभेद आदि का निरूपण है। पद्माभरण विशुद्ध अलकारग्रंथ है और इसकी रचना बैरीसाल के भाषाभरण के आधार पर की गई है। इनके उदाहरण बड़े ही सरस एवं चित्रात्मक हैं।

पद्माकर को अतिम उल्लेख्य आचार्य मानने का यह तात्पर्य कदापि नहीं समझना चाहिए कि ब्रजभाषा हिंदी के रीतिग्रंथों की परपरा यहीं समाप्त हो गई। इसके बाद भी लगभग ५० वर्षों तक ब्रजभाषा के माध्यम से रीतिग्रंथों की रचना होती रही। उसके बाद यह दायित्व खड़ी बोली पर आ गया और गद्य के माध्यम से काव्यशास्त्रीय चिंतन की परंपरा का आरंभ हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चरण मे दो और आचार्य हुए—रसिक-गोविंद और प्रताप साहि। यों तो रसिकगोविद प्रणीत नौ पुस्तको का पता

२३. हिं० सा० का इति०, ३०९-३१०।

इतिहास ग्रंथों से चलता है पर उनमें काव्यशास्त्रीय कृतित्व एक मात्र 'रसिक-गोविदानंदघन' ही है। इसमें रस, अलंकार आदि सभी काव्यागों का निरूपण है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लक्षण तो ब्रजभाषा गद्य में दिए गए हैं और उदाहरण पद्य में। साथ ही इसमे अनेक आचार्यों के मतों को उद्धृत करने के अनंतर ग्रथकर्ता ने अपने लक्षण और उदाहरण दिए हैं। प्रताप साहि का रचनाकाल सवत् १८८० से लेकर १६०० सवत् पर्यंत माना जाता है। प्रताप साहि ने भी लगभग नौ ग्र थ रचे थे। पर इनमे काव्यशास्त्रीय विषयों से सबद्ध ग्र थ पाँच है—काव्यविनोद, शृ गारमजरी, अलकारचिंतामणि, काव्यविलास और व्यग्यार्थकौमुदी। इन सभी ग्रंथों को मिलाकर देखने से शायद ही काव्य का कोई अग निरूपति होने से अवशिष्ट मिल सके।

विक्रम सवत् १६०० के बाद भी रीतिग्र थों की रचना ब्रजभाषा हिंदी के माध्यम से होती रही पर जिस त्वरा और यशोलिप्सा से ये रचनाएँ सवत् १६०० के पूर्व लिखी जाती रहीं वे परिस्थितियाँ अब न रहीं। अतएव इस काल को ब्रजभाषा काव्यशास्त्र के इतिहास मे ह्रासकाल मानना ही उचित है। अब ब्रज-भाषा काव्यशास्त्र की आधारशिला पर खड़ीबोली की गद्यात्मक कृतियों के आगार बनने जा रहे थे। तथापि इस क्षीयमाण युग मे भी कई ऐसे आचार्य हुए जिन्होंने अलंकार, रस या नायिकाभेद पर ब्रजभाषा मे अनेक रीतिग्रंथ लिखे। इस युग के काव्यशास्त्रियों मे रामदास, ग्वालकवि, लछिराम, लेखराज, गुलाबसिह, कविराजा मुरारिदान, गगाधर, महराजा प्रतापनारायण सिह प्रभृति स्मरणीय है। रामदास ने सवत् १६०१ मे समस्त काव्यागनिरूपक कविकल्पद्रुम नामक ग्र थ लिखा। ग्वालकवि ने रसरग नामक रसनिरूपक रीतिग्र थ रचा। लछिराम ने तो अनेक काव्यशास्त्रीय ग्र थ रचे जिनमे महेश्वरविलास और रावणेश्वरकल्पतरु अधिक प्रसिद्ध हैं। लेखराज ने सवत् १६३५ में गगाभरण नामक एक अलकार-ग्र थ रचा। इन्होंने स्वीकार किया है कि अलकारों के व्याज से मैंने गंगा का ही गुणगान किया है।[२४] अतएव ये काव्यशास्त्री होने की अपेक्षा भक्त अधिक प्रतीत होते है। गुलाबसिह ने वनिताभूषण नामक रीतिग्र थ लिखा है। इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे नायिकाभेदों और अलकारों का एक साथ निरूपण किया गया है। कविराजा मुरारिदान का जसवतभूषण, प्रतापनारायण सिंह का रसकुसुमाकर और गगाधर प्रणीत महेश्वरभूषण—ये सभी रीतिग्र थ भी ब्रजभाषा पद्य के माध्यम से ही लिखे गए।

२४. गंगाभरण, छंद १०।

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' और विहारीलाल भट्ट कालसीमा की दृष्टि से यद्यपि सवत् १९५० के बाद आते हैं तथापि इनकी रचनाएं आधुनिक होने की अपेक्षा रीत्यात्मक अधिक है। भानु जी ने सवत् १९६६ में काव्यप्रभाकर नामक ७८६ पृष्ठों का एक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचा। यह ग्र थ तो खडी बोली गद्य मे लिखा हुआ है, पर प्रस्तावना अंगरेजी मे लिखी गई है। ग्र थ के बारह मयूखो मे क्रमशः छद, ध्वनि, नायिकाभेद, उद्दीपन, अनुभाव, सचारी भाव, स्थायी भाव, रस, अलकार, दोष, काव्यनिर्णय, और कोश-लोकोक्ति-सग्रह की अत्यत विस्तार के साथ विबेचना की गई है। ग्र थ का विशाल कलेवर होने के कारण मौलिक चिंतन या प्रतिपादन नही बल्कि अनेक सस्कृत, हिंदी के लक्षणों और उदाहरणों का सकलन ही है। जो हो, पर यह एक अनेकाग निरूपक ग्र थ है। विहारीलाल भट्ट ने सवत् १९९४ मे साहित्यसागर नामक ग्र थ रचा। ग्र थ दो भागों मे विभाजित है और कुल मिलाकर इसमे १५ तरगे है। ग्र थ मे साहित्य के सभी अगों का निरूपण किया गया है, यहा तक कि नाटक और गद्यकाव्य का भी। इस दिशा में इस ग्र थ पर साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) का पर्याप्त प्रभाव है। ग्र थ की अतिम तीन तरगो में आध्यात्मिक नायिकाओं के भेद, निर्वाण और दानप्रकरण भी जोड़ दिए गए है।

इस प्रकार सातवी सदी के आचार्य पुष्य के युग से लेकर सवत् १९६६–७० पर्यंत हिंदी के रीतिग्र थों का क्रमिक विकास होता रहा। कृपाराम से प्रताप नारायण और गगाधर के युग तक (सवत् १५९८ से संवत् १९५० पर्यंत) जितने भी लक्षणग्र थ हिंदी में लिखे गए उनका माध्यम व्रजभाषा पद्य रहा। इन ग्र थों में सर्वांशतः मौलिकता तो कही नहीं है। पर आशिक मौलिकता अनेक आचार्यों मे विद्यमान हैं। इस दृष्टि से केशव, चिंतामणि, कुलपति, देव, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि आदि उल्लेखनीय हैं। सवत् १९५० के अनतर हिंदी काव्यशास्त्रीय चितन की दिशा परिवर्तित हो गई। ब्रजभाषा पद्य के स्थान पर खड़ी बोली गद्य का माध्यम स्वीकृत किया गया। यह हिंदी काव्यशास्त्र के विकास का उत्तरार्द्ध खड है। तथापि इस कालखड मे भी जगन्नाथप्रसाद 'भानु' और विहारी भट्ट जैसे कुछ एक आचार्य हुए जो प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकालीन परंपरा के अधिक निकट हैं। किंतु ये दो चार समीक्षक अपवाद ही हैं।

४. रीतिकाल के तीन काव्यसंप्रदाय

हिदी के रीतिग्रथो का या आचार्यों का सांप्रदायिक वर्गीकरण थोड़ा दुष्कर अवश्य है क्योंकि इनकी प्रवृत्ति स्थिर नहीं थी। किसी एक काव्यदिशा में प्रवृत्त होकर किंवा किसी एक काव्यसंप्रदाय को अपनाकर सिद्धात ग्रथ लिखना इन्होंने सीखा ही नही था। परपरागत सस्कृत काव्यशास्त्र का ज्ञानसंभार इन्हें उपलब्ध तो

हुआ, पर उसे विना पचाए ही ये काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के निर्माण में लग गए। परिणाम यह हुआ कि इनके काव्यशास्त्रीय विचार नए काव्यसप्रदाय को जन्म देने में तो नितात असमर्थ रहे ही बल्कि परंपरागत काव्यसंप्रदायों का अनुमोदन भी व्यवस्थित रूप में इनके द्वारा संभव न हो सका।

रीतिग्रंथों के वर्गीकरण की दिशा में कई विद्वानों ने प्रयत्न किए हैं। डा० नगेद्र ने शैली के आधार पर इन ग्रथों का वर्गीकरण किया है। डा० ओमप्रकाश और डा० भगीरथ मिश्र ने काव्यागों के आधार पर एकांगनिरूपक, अनेकागनिरूपक आदि भेद बताए हैं। रीतिकाल के कवि दूलह ने भी रीतिकवियों के चार प्रभेद प्रतिपादित किए थे—सत्कवि, कर्ता, अलकृती और कवि। किंतु इन सारे वर्गीकरणो का अपना महत्व रहते हुए भी रीतिकालीन आचार्यों के सैद्धातिक अभिमत स्पष्ट नहीं हो पाते हैं। अतएव इनके ग्रथों के तात्विक एव तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर रीतिकालीन काव्यसप्रदायों का निर्धारण वाछित है।

मेरी धारणा है कि रीतिकालीन आचार्य भी सस्कृत काव्यशास्त्र के प्रणेता आचार्यों की तरह किसी न किसी विचारधारा-विशेष के पोषक या अनुयायी थे, चाहे यह विचारधारा उन्हे परपरा से ही क्यों न प्राप्त हुई हो। जिस प्रकार समस्त सस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों को हम रस, रीतिगुण, अलंकार, औचित्य, ध्वनि आदि काव्यतत्वों के प्रतिपादन समर्थन के कारण छह सप्रदायो में विभक्त पाते हैं, उसी प्रकार ये रीतिकालीन आचार्य भी रससप्रदाय, अलकारसंप्रदाय और ध्वनिसप्रदाय में विभक्त हैं। इस युग में आकर रीतिगुण, वक्रोक्ति और औचित्य का प्रतिपादन किसी आचार्य ने नही किया। सच पूछिए तो इन काव्यतत्वों के आधार पर बने काव्यसप्रदाय सस्कृत युग में ही अमान्य हो गए थे। अतएव ये हिंदी के रीतिकाल मे उज्जीवित न हो सके। कहने का तात्पर्य यह कि इस युग मे रीतिगुण, वक्रोक्ति और औचित्य पर स्वतत्र ग्र थ नही लिखे गए। पर इतना निश्चित है कि रीतिकालीन सिद्धात ग्रथों मे भी किसी किसी आचार्य ने रीति या वृत्ति का काव्याग के रूप में निरूपण किया है। मतिराम, पद्माकर, बिहारी आदि की रचनाओं में अनेक वक्रोक्तिपूर्ण कविताए भी उपलब्ध है। तथापि वक्रोक्ति का कुतलीय वक्रोक्ति के अर्थ मे शास्त्रीय निरूपण कही भी उपलब्ध नहीं होता है। अधिक से अधिक वक्रोक्ति को शब्दालकार के रूप में ग्रहण किया गया है। औचित्य की तो किसी रीतिग्रंथ मे चर्चा भी नहीं है। फलतः अलंकारसप्रदाय, रससप्रदाय और ध्वनिसप्रदाय—ये तीन काव्यसप्रदाय ही हिंदी के रीतिकालीन काव्यशास्त्र में बचे रहे, ऐसा मानना चाहिए। इन्ही तीन काव्यसंप्रदायों के आधार पर हिंदी काव्यशास्त्र के रीतिकालीन आचार्यों का वर्गीकरण नितात वाछनीय एवं उपयुक्त है।

साप्रदायिक वर्गीकरण के लिये मैंने तीन आधारों को माना है। वे आधार इस प्रकार हैं—

१–जिन्होंने केवल अलकारग्र थ लिखे हैं, निःसदेह उनकी प्रवृत्ति अलकारों की हैं। अतएव ऐसे आचार्य अलंकारसप्रदाय के हैं।

२–जिन आचर्यों ने केवल रसनिरूपक ग्र थ, नायिकाभेदपरक ग्र ंथ रचे है, वे वस्तुतः किसी न किसी रूप में रसतत्व का ही अनुमोदन करते हैं। अतएव इन रस-रीति मात्र के निरूपक आचार्यों को रससप्रदाय मे निवेशित करना चाहिए।

३–जिन आचर्यों ने अनेक प्रकार के रीतिग्रथ लिखे है अर्थात् अलकारग्रथ, नायिका भेद ग्रथ, अनेकाग-निरूपक काव्यशास्त्र आदि किवा एक ही ग्र थ में काव्य के अनेक काव्यागों का निरूपण किया है, इन्हे इन्ही के द्वारा प्रतिपादित काव्यादर्शों के आधार पर किसी अन्यतम सप्रदाय में समाविष्ट करना चाहिए।

रससंप्रदाय

उक्त आधारों को ध्यान में रखकर मैं कृपाराम, सूरदास, नंददास, केशव, चिंतामणि, तोष, मतिराम, सुखदेव, देव, सूरति मिश्र, रसलीन, पद्माकर, रसिकगोविद, श्रीपति और ग्वाल को रससप्रदाय के आचार्य मानता हूँ। इनमें से कृपाराम, सूरदास, नददास, तोष, सुखदेव और रसलीन इसलिये रससंप्रदाय के आचार्य माने जायँगे कि उन्होंने मात्र रसनिरूपक, नायिकाभेद निरूपक या श्रृ ंगारनिरूपक रसग्र ंथ ही रचे हैं। केवल इसी कोटि के ग्र थों को रचकर इन्होंने रसवादिता का ही परिचय दिया है। यह बात और है कि रससिद्धात निरूपण की दृष्टि से इनमें से किसी का महत्व अल्प हो या अधिक हो, पर ये सभी नि.सदेह रससप्रदाय के आचार्य हैं। आचार्य केशव को प० रामचंद शुक्ल ने अलकारवादी कहा है। इसका मुख्य कारण यह था कि इन्होंने कविता, वनिता और मित्त (मित्र) की अलकारयुक्तता पर जोर दिया था।[२५] साथ ही कविप्रिया नामक रीतिग्र थ में अलकारों का निरूपण भी किया है। मेरी दृष्टि में केशवदास एक रसवादी आचार्य हैं। क्योकि इन्होंने रस पर रसिकप्रिया नामक एक स्वतत्र ग्र थ रचा है। जहाँ तक कविप्रिया का सबंध है, वह एक-मात्र अलंकार निरूपक ग्र थ नही हैं बल्कि उसमे अनेकागों का निरूपण हुआ है। दूसरी बात यह कि रसिकप्रिया में भक्ति और श्रृ गार की मिश्रित रसधारा के प्रवर्तन का श्रेय केशव को प्राप्त है। अलंकारों के क्षेत्र मे इन्होंने वैसी कोई सैद्धातिक नवीनता प्रदर्शित नही की है। इसके अतिरिक्त अपने दोनों ग्रंथों के आरभ मे इन्होंने स्पष्टतः लिखा

२५. कविप्रिया, १।५।

है कि कविप्रिया की रचना बालकों के लिये की गई है तथा रसिकप्रिया की रचना परिपक्वबुद्धि रसिकों के लिये—

क— समझै बाला-बालकनि बरनन पथ अगाध।
कविप्रिया 'केशव' करी छमिजो बुध अपराध॥

—कविप्रिया, ३ । १

ख— रसिकन को रसिकप्रिया कीनी केशवदास।

—रसिकप्रिया, १ । १२

अतएव केशवदास निःसंदेह एक रसवादी आचार्य थे। इतना अवश्य है कि कवि के रूप मे इनमे अलकारप्रियता अधिक मात्रा में विद्यमान थी। आचार्य चिंतामणि ने एक ओर शृंगारनिरूपक शृंगारमजरी लिखी और दूसरी ओर अनेकाग निरूपक कविकल्पतरु और काव्यप्रकाश जैसे ग्रंथ लिखे। फिर भी आपके काव्यादर्श रससिद्धात के अनुकूल ही थे—

क— बतकहाउ रस में जु है कवित्त कहावै सोय।

—कविकुलकल्पतरु, १।४

ख— सबै अर्थ लघु वर्णिये, जीवित रस जिय जानि।
अलंकारहारादि ते उपमादिक गन आनि॥

—वही, छंद ९

मतिराम ने ललितललाम नामक अलंकारग्रंथ लिखा और रसराज तथा साहित्यसार नामक नायिकाभेदपरक एवं शृंगारनिरूपक रसग्रंथ भी। फिर भी इन्होंने स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है कि ललितललाम की रचना अपने आश्रयदाता राजा भावसिंह की तुष्टि के लिये की गई और रसराज की रचना सहृदय काव्यमर्मज्ञों की परितुष्टि के लिये। मतिराम की निम्नोक्त उक्तियों से उनकी सैद्धांतिक मान्यता के निर्धारण मे सहाया ली जा सकती है—

क— भाव सिंह की रीझ कों कविता भूषनधाम।
ग्रंथ सुकवि 'मतिराम' यह कीनों ललितललाम॥

—ललितललाम, छंद ३८

ख— समुझि समुझि सब रीझिहै सज्जन सुकवि समाज।
रसिकन के रस को कियो नयो ग्रंथ 'रसराज'॥

—रसराज, छुद ४२७

फलतः सिद्ध है। कि मतिराम की व्यक्तिगत प्रवृत्ति रसवाद की ओर थी और ललितललाम का प्रणयन अलकारवादी प्रवृत्ति के कारण नही बल्कि फरमायशी

दुराग्रह में पड़कर इन्हे करना पड़ा था। आचार्य देव ने रस-सामान्य-निरूपक, शृंगार और नायिकाभेद विषयक तथा अनेकागनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की अनेकविधता के कारण इनके संप्रदायविशेष का निर्धारण थोड़ा कठिन अवश्य है, तथापि इनके ग्रंथों के सम्यक् अनुशीलन से यह नितात स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य तत्व रस को ही स्वीकृत किया है। इस सदर्भ मे देव के निम्नोक्त उद्गार ध्यान देने योग्य है—

क– काव्य सार शब्दार्थ को, रस तिहि काव्यासार।
सो रस बरसत भावबस, अलंकार अधिकार ॥
ताते काव्यामुख्य रस, जामे दरसत भाव।
अलंकार शब्दार्थ के, छंद अनेक सुगाव ॥

—शब्दरसायन, प्रकाश ३, पृ० २८

ख– रहत न घरवर, धाम, धन, तरुवर, सरवर कूप।
जग सरीर जग में अमर, भव्य काव्य रस रूप ॥

—वही, प्र० १, पृ० १

सूरति मिश्र के ग्रंथ भी अनेक प्रकार के हैं। अलंकारनिरूपक, रस-सामान्य-निरूपक और अनेकांगनिरूपक—कई कोटियों के ग्रंथ इन्होंने रचे हैं। तथापि अपने काव्यादर्श के आधार पर ये रसवादी ही प्रतीत होते है। इन्होने अपने काव्यसिद्धात नामक ग्रंथ मे लिखा है कि वही काव्य तथा कविकर्म महत्वपूर्ण है जहाँ मनोरंजनकारी अलौकिक रीति (रसरीति) का निवेश रहता है। अतएव अनेकविध रीतिग्रंथों के रचयिता होने के बावजूद भी सूरति मिश्र रसवाद के पोषक ही प्रमाणित होते हैं। पद्माकरप्रणीत दो प्रकार की रीतिरचनाएँ पाई जाती है—अलकारनिरूपक पद्माभरण और रस-सामान्य-निरूपक जगद्विनोद। दोनों ग्रथों के अत मे दिए गए रचनोद्देश्यपरक वाक्यों की तुलना से यह विदित होता है कि पद्माभरण के द्वारा इन्होंने युग में प्रचलित अलकारपथ (अलंकार रीति) का पालन मात्र किया है और जगद्विनोद की रचना के द्वारा रसिको (काव्यमर्मज्ञ सहृदयों) को मोदपुरःसर वशीकृत करना चाहा है। पद्माकर की निजी उक्तियाँ दोनों ग्रथों में इस प्रकार हैं—

क– राधा माधव कृपा लहि लखि सुकविन को पंथ।
कवि पद्माकर ने कियो पद्माभरण सुग्रंथ ॥

पद्माभरण, ३४४

ख– जगतसिंह नृप हुकुम तें पद्माकर लहि मोद।
रसिकन के बसकरन को कीन्हों जगतविनोद ॥

—जगद्विनोद, ७३१

पद्माकर की अन्य काव्यकृतिया भी रससंमत ही प्रतीत होती हैं। अतएव इन्हे मूलतः रसवादी ही मानना चाहिए और इनके अलकारनिरूपण को युग की माँग के पूर्त्यर्थ स्वीकार करना चाहिए।

आचार्य श्रीपति की भी तीन वर्गों की रीति पुस्तके हैं—अलकारनिरूपक अलकार-गगा, रसनिरूपक रससागर और अनेकागनिरूपक काव्यसरोज तथा काव्यकल्पद्रुम। तथापि इन्होंने काव्यसरोज मे सुस्पष्ट कहा है कि काव्य मे दोषों का अभाव तथा गुणो और अलकारो का अस्तित्व वाछनीय है पर रसो के बिना कवितारूपिणी वनिता छविमती नही हो पाती है —

यद्यपि दोष विनु गुन सहित, अलंकार सो लीन।
कविता वनिता छवि नही, रसबिन तदपि प्रवीन॥

काव्यसरोज, १३। १

निष्कर्ष यह कि अन्य काव्यागों की अपेक्षा ये रसतत्व को ही अधिक महत्व प्रदान करते हैं। फलतः श्रीपति के रसवादो होने में किसी तरह की विप्रतिपत्ति नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार ग्वाल ने भी अलंकारनिरूपक और अनेकाग-निरूपक रीतिग्रंथ तो लिखे है पर रस को **चिदानदघन ब्रह्मसम** मानकर इन्होंने अपनी रसवादिता को ही द्योतित किया हैं—

चिदानंदघन ब्रह्मसम, रस है श्रुति परमान।
दुबिध सुरस लोकिक जु इक, दुतिय अलौकिक जान॥

—रसरग (ह० लि०), २। २, पृ० ३६

रसिकगोविंद रचित 'रसिकगोविंदानदघन' एक अनेकागनिरूपक रीतिग्रथ है। इसके अतर्गत रस और नायकनायिका का निरूपण तो है किंतु ध्वनि का नहीं अतएव जाहिर है कि रसिकगोविद विशुद्ध रसवादी थे, रसध्वनिवादी नही।

उपर्युक्त अनुशीलन से यह सप्रमाण सिद्ध है कि इन आचार्यों ने हिंदी के रीतिसाहित्य में रससप्रदाय का ही पोषण किया है।

ध्वनिसंप्रदाय

कुलपति, भिखारीदास, प्रतापसाहि, सोमनाथ, कुमारमणिभट्ट, रामदास प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों को निर्भ्रांत रूप से ध्वनिसप्रदाय के अतर्गत रखा जा सकता है। यह उल्लेख निराधार नही है बल्कि उनके ग्रथों मे उपलब्ध सैद्धातिक मान्यताओ के आधार पर ही यह निर्णय किया गया है। सर्वप्रथम कुलपति को लीजिए। कुलपति ने रसरहस्य नामक रससामान्य निरूपक ग्रथ लिखा है। पर इन्होंने अपने ग्रंथ में आनदवर्द्धन और मम्मट की रसध्वनिपरंपरा का ही अनु-सरण किया है। कहने का तात्पर्य यह कि इन्होंने व्यंग्य या ध्वनि को ही काव्य

की आत्मा माना है तथा असलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के अंतर्गत ही रसभावादि का निरूपण किया है। कुलपति ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि ध्वनि (व्यंग्यार्थ) काव्यपुरुष की आत्मा है, शब्दार्थ देह है, गुण गुण है, अलंकार भूषण है, काव्य-दोष दूषण हैं और आत्मा (ध्वनि) की सिद्धि के लिये ही देह आदि साधनों की उपादेयता है—

व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह।
गुन गुन भूषन भूषने दूषन दूषन एक॥
सो कवित्त है तीन विधि उत्तम मध्यम और।
जीव सु रस पुनि देहै बलि जेहि ठौर॥

— रसरहस्य, १।३४-३५

इतना ही नहीं, ध्वनि की प्रधानता, गौणता और अस्फुटता के आधार पर ही इन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम इन त्रिविध काव्यभेदों को प्रतिपादित किया है और ध्वनिप्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य की संज्ञा प्रदान की है। फलतः ये निःसंदेह ध्वनिवादी हैं। आचार्य भिखारीदास की तीन रचनाएं हैं—रससारांश, शृंगारनिर्णय और काव्यनिर्णय। तीनों ग्रंथ तीन वर्ग के हैं। रससारांश में रस-सामान्य का निरूपण है और शृंगारनिर्णय नायक-नायिकाभेद और मात्र शृंगार रस का निरूपक ग्रंथ है तथा काव्यनिर्णय अनेकांगनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। अतएव भिखारीदास को रसवादी माना जाय या ध्वनिवादी, यह एक विवेच्य विषय है। एतदर्थ इनके काव्यादर्शों को टटोलना होगा। दास ने अपने अनेकांग निरूपक काव्यनिर्णय नामक ग्रंथ में लिखा है कि रस भाव आदि यद्यपि भिन्न भिन्न रूप में (रससारांश और शृंगारनिर्णय में) प्रतिपादित किए गए हैं पर हैं वे व्यंग्य या ध्वनि ही—

भिन्न भिन्न यद्यपि सकल रस भावादिक दास।
रसै हि व्यंग सब कोउ कह्यो, ध्वनि को जहां प्रकास॥

—काव्यनिर्णय, उल्लास ४, पृ० १००

ऐसा सभी ध्वनिवादी आचार्यों ने भी माना है। फलतः ध्वनिवादी परंपरा के अनुसार इन्होंने भी रस भावादिकों को असलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि में अंतर्भुक्त किया है और ध्वनि की असंख्यता के कारण इसका एक मात्र भेद ही स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त, चमत्कारी व्यंग्यार्थ से युक्त काव्य को ही उत्तम अर्थात् ध्वनिकाव्य भी माना है। निम्नोक्त उद्धरण इस संदर्भ में ध्यातव्य हैं—

क— रसभावन के भेद की गनना गनी न जाइ।
एक नाम सब को कह्यो, रसै व्यंग ठहराइ॥

—काव्यनिर्णय, उ० ६, पृ० ११८

ख- वाच्य अर्थ में व्यंग में चमत्कार अधिकार।
धुनि ताही को कहत हैं उत्तम काव्य विचार॥

—वही, उ० ६, पृ० ११३

अतएव स्वतंत्र रसग्रंथों के प्रणेता होने के बावजूद दास के सैद्धांतिक आदर्श ध्वनिवाद के अनुकूल ही प्रमाणित होते है।

सोमनाथ का अनेकागनिरूपक ग्रंथ रसपीयूषनिधि है। इसमे काव्य के सभी अगों-रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, ध्वनि आदि पर विचार किया गया है। ऐसी स्थिति मं सोमनाथ का सप्रदायनिर्धारण भी दुष्कर है। मैंने उन्हे भी आनद-वर्द्धन और मम्मट की रसध्वनि परंपरा मे ग्रथित देखकर ध्वनिवादी ही स्वीकार किया है। यद्यपि २२ तरगों मे विभक्त सोमनाथ का रसपीयूषनिधि नामक ग्रंथ विशालकाय है और उसमें काव्य के विभिन्न अगों का वर्णन है, फिर भी ७वी तरग से लेकर १८वी तरंग पर्यंत--१२ तरगों मे ध्वनि का विस्तृत विवरण इनकी ध्वनिवादी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। साथ ही इनके काव्यादर्श भी ध्वनिवाद के पोषक हैं। मम्मट की भाँति इन्होंने भी व्यंग्यप्रधान काव्य को उत्तम माना है। सोमनाथ की दृष्टि मे ध्वनि ही काव्यपुरुष की आत्मा है तथा शब्द और अर्थ है उसके अग—

क- व्यंग्य सरस जहं कवित्त में सो उत्तम उर आनि।

—रसपीयूषनिधि, ६।७

ख- व्यंगि प्राण अरु अंग सब, शब्द अरथ पहिचानि।
दोष और गुण अलंकृत दूषणादि उर आनि॥

—वही, ६।६

सोमनाथ के ध्वनिवादी होने का एक और भी सबूत है, वह यह कि इन्होंने समस्त रसप्रपंच का उल्लेख ध्वनि के अतर्गत ही किया है। अतएव इन्हे ध्वनि-वादी ही मानना चाहिए।

प्रतापसाहि के तीन रीतिग्रंथ हैं—व्यंग्यार्थकौमुदी, काव्यविलास और काव्य-विनोद। ये तीनों ग्रंथ अनेकागनिरूपक कोटि के हैं। सभी काव्यागों की विचारणा के बावजूद भी काव्यसिद्धात की दृष्टि से ये ध्वनिसप्रदाय के अतर्गत ही परिगणित किए जायँगे। प्रतापसाहि ने भी ध्वनिसंप्रदाय के अन्य आचार्यों की भाति व्यंग्यार्थ को काव्यप्राण, शब्दार्थ को काव्याग तथा व्यग्ययुक्त काव्य को उत्तम काव्य प्रतिपादित किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

व्यंग्य जीव है कवित मे, शब्द अर्थ गनि अंग।
सोई उत्तम काव्य है, बरने व्यंग प्रसंग॥

—व्यंग्यार्थकौमुदी, ३।५

अतएव इनका ध्वनिवादी होना निःसन्दिग्ध है।

कुमारमणिभट्ट का 'रसिकरसाल' भी अनेकांगनिरूपक वर्ग का रीतिग्रंथ है। इन्होंने स्वयं घोषित किया है कि मम्मट के काव्यप्रकाश को हृदयंगम कर इस ग्रंथ की रचना भाषा में प्रस्तुत की गई है।[२६] यह बात और है कि इन्होंने मम्मट की विवेचना की सूक्ष्मता का पूर्णतः अनुसरण किया या नही पर काव्य-सिद्धात की दृष्टि से पूर्णतः मम्मट से सहमत हैं। अतएव कुमारमणिभट्ट को ध्वनि-वादी मानने मे किसी तरह की शका नहीं की जा सकती है। रामदास 'कविकल्पद्रुम' के प्रणेता आचार्य है। यह ग्रंथ भी अनेकागनिरूपक कोटि का है। तथापि सैद्धातिक अभिमत की दृष्टि से रामदास ध्वनिवादी ही प्रतीत होते है। इन्होंने भी रस को ध्वनि के अतर्गत रखकर ही विवेचना प्रस्तुत की है।

फलतः ये और इन जैसे अन्य आचार्यों के सप्रदाय को ही रीतिकालीन हिंदी काव्यशास्त्र का ध्वनिसप्रदाय कहना चाहिए।

अलंकारसंप्रदाय

जसवंत सिह, भूषण, गोप और दूलह को अलंकार संप्रदाय के आचार्यों की कोटि में रखना चाहिए। उक्त सभी आचार्यों ने रीतिकालीन शृंगारनिरूपण की प्रवृत्ति के प्रतिकूल मात्र अलकारनिरूपक ग्रंथ ही लिखे है। अतएव इनके अलंकारवादी होने मे किसी तरह के संदेह की गुंजादश ही नही है। फलतः इनके काव्यादर्शों या काव्यसिद्धातों के अनुसंधान के बिना ही इन्हे इनकी अलंकार प्रवृत्ति के आधार पर अलंकारवादी कहा जा सकता है।

५. रीतिकालीन विवेचना की परिसीमाएँ

रीलिकालीन रसशास्त्र के अध्ययन के पूर्व हमे उस युग की परिस्थितिजन्य सीमाओं को ध्यान मे ले आना चाहिए। अठारहवी शताब्दी के प्रारंभ मे जब हिंदी (ब्रजभाषा) माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र का चिंतन आरभ हुआ तो संस्कृत काव्यशास्त्र की चितनधारा पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। भिन्न भिन्न काव्य-संप्रदायों के माध्यम से अनेक मौलिक उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी थी। काव्यागों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों के ताने बाने के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का रंगीन एवं सुदृढ पट निर्मित हो गया था। ऐसी स्थिति में रीतिकालीन आचार्यों को इस क्षेत्र में मौलिक चिंतन एवं उद्‌भावना का अत्यल्प अवकाश प्राप्त था। 'सबसे बड़ी गलती इनके द्वारा यह हुई कि इन्होंने वर्गीकरण की दिशा में ही न्यूनाधिक नवीनता प्रदर्शित करनी चाही, यद्यपि संस्कृत-युग में ही यह कार्य पराकाष्ठा को पार कर चुका था।

२६. रसिकरसाल, १।४।

अतएव इनके उद्भावन-प्रयास विफल ही रहे। इस युग के आचार्यों को मौलिक होने और विषयवस्तु को अग्रसारित करने का श्रेय तभी मिलता यदि इस युग के रसशास्त्र मे रसस्वरूप, निष्पत्ति और साधारणीकरण जैसे गभीर विषयों का विवेचन किया गया होता। कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन कर रसशास्त्र की नूतन व्याख्या का अभी पर्याप्त अवकाश इन्हे प्राप्त था किंतु रीतियुगीन आचार्यों का ध्यान इस ओर न गया। इसी प्रकार पश्चिम में अब तक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रारंभ हो गया था और उस आलोक में रसशास्त्र की व्याख्या की यदि इन्होंने चेष्टा की होती तो इन्हे पूरी सफलता मिली होती। पर ऐसा भी सभव न हो सका। इनका अध्ययन भी अत्यंत सीमित था। कुछ एक परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अधकचरे ज्ञान के आधार पर ही इन्होंने शास्त्रीय गंभीर चिंतन का दायित्व उठा लिया। परिणामतः परंपरागत घिसी पिटी बातों को ब्रजभाषा के माध्यम से दुहरा देने के सिवाय इनके पास अन्य कोई सरणि भी नही थी।

अपने प्रतिपाद्य विषयों को व्यक्त करने के लिये समुन्नत एवं सशक्त गद्यात्मक माध्यम का सबल भी इन्हे प्राप्त न था। जिन सामतों, रईसों और अमीरों के आश्रय मे रहकर तत्प्रदत्त ठीकरों पर ये पलते थे, वे काव्यरसिक तो थे पर उनकी चेतना अधिक जाग्रत न होने के कारण विवेचन की जटिल गुत्थियों मे उलझने से घबड़ाती थी। सस्कृत काव्यशास्त्र की चिंतनधारा जो विवेचना की बारीकियों और तर्क वितर्क के घटाटोपों से बोझिल होकर सदियों से प्रवाहित होती चली आ रही थी, इस युग तक आते आते ह्रासोन्मुख ही नही प्रत्युत क्षीणता को प्राप्त कर चुकी थी, भले ही पडितराज जगन्नाथ जैसे आचार्य इसके अपवाद रहे हों। परिस्थितिजन्य इन्ही सीमाओं के अभ्यतर रीतिकालीन आचार्यों को काव्यशास्त्र की चिंतना करनी पड़ी थी। आज उनकी मौलिकता के अनुसंधायकों को उपर्युक्त सीमाओं और प्रतिबधों को ध्यान में रखते हुए ही रीतिकालीन रसशास्त्र की सफलता विफलता का मूल्याकन करना चाहिए।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह नही है कि रीतिकाल के आचार्य सर्वथा हीन एव उपेक्षणीय है। इस संदर्भ मे थोडी उदारता बरतनी होगी। हमें भलीभाँति ज्ञात है कि सस्कृत काव्यशास्त्र के सुदीर्घावधिक इतिहास मे भी सभी आचार्य समान रूप से मौलिक नही थे। काव्यशास्त्रीय सिद्धातों के प्रवर्तक या स्रष्टा आचार्य इने गिने ही थे। प्रायः प्रत्येक काव्यसप्रदाय मे दो तीन या कभी कभी तो एक ही ऐसे आचार्य उपलब्ध होते है जिन्हे हम सर्वांशतः मौलिक घोषित कर सकते है। भरत, भामह, वामन, दडी, आनंदवर्द्धन, कुंतक, अभिनवगुप्त, क्षेमेंद्र प्रभृति कुछ एक ऐसे ही आचार्य हैं जिनमें मौलिकता कूट कूट कर भरी

हुई है। वस्तुतः काव्यशास्त्र के स्रष्टा या सिद्धात प्रवर्तक ये ही आचार्य थे। अन्य आचार्यों ने इन्हीं के द्वारा प्रवर्तित काव्यसिद्धातों का भाष्य किया है। प्रत्येक काव्यसंप्रदाय मे जैसे शास्त्रकार आचार्य हैं, वैसे ही अनेक भाष्यकार भी। अपनी भाष्यकरी वृत्ति के प्रसग मे कही कही विवेचना की सूक्ष्मतम सतह पर जाकर इन्होंने भी अनेक नई बाते प्रतिपादित की है पर मुख्यतः अपने पूर्ववर्ती काव्य-सिद्धातों का पुनराख्यान या तुलनात्मक अध्ययन ही इनके ध्येय और कार्य रहे हैं। ऐसे भाष्यकार आचार्यों मे हम उद्भट, रुय्यक, भट्टलोल्लट, शकुक, भट्ट-नायक, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ प्रभृति आचार्यों को गृहीत कर सकते है। इनके अतिरिक्त, सस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों का एक तीसरा वर्ग भी है जिन्हें हम कविशिक्षक कह सकते हैं। काव्यशास्त्रीय सिद्धातों किंवा किसी एक सिद्धात को आधार बनाकर सरल भाषा मे उनका प्रतिपादन कर देना ही इनका लक्ष्य था। विवेचना की ऊहापोह किवा तर्क वितर्क के आडंबर से सर्वथा विलग रहकर ही इन्होंने अपने ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं। ऐसे कविशिक्षक आचार्यों मे विद्या-नाथ, जयदेव, केशव मिश्र, अप्पय दीक्षित, भानुदत्त प्रभृति आचार्यों की गणना होनी चाहिए।

हिंदी साहित्य के ये रीतिकालीन आचार्य न तो शास्त्रस्रष्टा थे और न भाष्य-लेखक, वस्तुतः ये कविशिक्षक थे। कवियों और काव्य रसिको को सरल हिंदीपद्य के माध्यम से काव्यशास्त्रीय गहन विषयों को समझा देने का प्रयास ही इनके आचार्यत्व की मुख्य उपलब्धि है। फलतः इनके ग्रथों मे सैद्धातिक मौलिकता का अनुसधान ही इन्हे परिधि से बाहर ले जाकर देखने का प्रयास है। फिर भी इतना अवश्य कि यदि ये आचार्य हिंदी के माध्यम से प्राचीन सैद्धातिक समीक्षा-शास्त्र को जगाए न रखते तो आज हिंदी साहित्य का सबंध प्राचीन काव्यसिद्धातों से सर्वथा विच्छिन्न हो गया होता। आधुनिक भारतीय भाषाओं के विभिन्न साहित्यों मे यह श्रेय केवल हिंदी को ही प्राप्त है (मराठी को भी) कि संस्कृत काव्यशास्त्र की चिंतनधारा निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित होकर आज भी इसकी जड़ों को सींच रही है। आज भले ही किसी भारतीय भाषा के साहित्य में दो-चार रसालंकारों से संबद्ध ग्रंथ लिख लिए गए हों, पर, ऐसा कही नही देखा जाता कि सस्कृत काव्यशास्त्र-गगन के अंतिम अस्तगत दिनमणि जगन्नाथ का आलोक आँखों से ओझल भी नहीं हो पाया कि केशव और चितामणि से लछिराम तक या अर्वाचीन काल तक आइए तो डा० नगेंद्र तक, क्रमशः शताधिक नक्षत्र अपने अपने प्रकाश से निरंतर समीक्षापथ को आलोकित करने लगे। अतएव रीतिकालीन आचार्यों में सैद्धांतिक मौलिकता हो या न हो, उनका सबसे बड़ा

श्रेय यह है कि संक्रमणकाल में भो इन्होने भारतीय काव्यशास्त्र की चिंतनधारा को जीवित रखा।

विशेषतः रससिद्धात के क्षेत्र मे इनकी देन यह है कि इन्होंने रससिद्धात के अतर्भोग से मुक्त कर इसे प्रशस्त पथ पर प्रतिष्ठित किया। रससिद्धांत के प्रथम आचार्य भरत ने इसे स्वतत्र रूप मे ही प्रवर्तित किया था, ध्वनिवाद का अग बनाकर नही। सस्कृत के परवर्ती आचार्यों में आनदवर्द्धन से जगन्नाथ पर्यंत अधिकाश आचार्यों ने असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के अतर्गत ही नौ या दस रसों की निरूपणा की। किंतु रीतिकालीन जिन आचार्यों के उद्धरण आगे दूसरे खंड में संकलित किए गए हैं, उनमें से अधिकाश ने ध्वनिमुक्त रस का ही निरूपण किया। केवल चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास और प्रतापसाहि ही ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि मे रसों को अतर्भुक्त किया। तथापि इन्होंने भी नायिकाभेदों के विस्तृत उल्लेख तथा शृंगार के रसराजत्व की प्रतिष्ठा के द्वारा व्यजना से यही प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि रसवाद एक 'सर्वतत्रस्वतत्र' सिद्धात है। इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों के हाथों रसवाद या शृंगारवाद को पुनः वही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो भरत और भोजराज के कृतित्वों द्वारा प्राप्त थी।

यह सच है कि कविशिक्षक होने के कारण तथा परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण रसस्वरूप, रसोपकरण और रसभेद में मौलिकता प्रदर्शित करने का इन्हें न तो अवकाश था और न वैसी कोई गु जायश ही रह गई थी फिर भी अपने अध्ययनक्रम में रीतिकालीन रसग्र थों मे जो यत्किंचित् मौलिकता उपलब्ध हुई है उन्हे क्रमशः प्रस्तुत कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। परपरागत विषयों का पुनराख्यान तो अग्रिम उद्धरणों मे स्पष्टतया उद्भासित है अतएव अपने वक्तव्य के सीमित क्षेत्र में उनकी चर्चा मैं अनावश्यक मानता हूँ।

६. रीतिकालीन रसविवेचना के विशिष्ट अंग

क– रसस्वरूप और अभिव्यक्ति

इस क्षेत्र में केशव की देन निःसदिग्ध है। केशव ने शृंगार को रसों का नायक माना और अन्य सभी रसों का इसमें अतर्निवेश किया। सभी शृंगार पर्यवसायी रसों के आश्रयालंबन और विषयालबन के रूप में हरि और राधा को स्वीकार किया। एतदर्थ प्रत्येक परंपरागत शृंगार, हास्य आदि रस के साथ ब्रज-राज हरि का संबंध या आलबनत्व उन्हे सिद्ध करना पड़ा है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—वृषभानुकुमारी के साथ ब्रजराज कृष्ण का शृंगारी रूप, हास्य और प्रसन्नता का उनमें निवास होने के कारण हास्यालंबनत्व, माता यशोदा के द्वारा

बाँधे जाने पर उनका करुणामय रूप, केशी के प्रति क्रोध प्रकट करने पर रौद्ररसमय रूप, वत्सासुर की हत्या में उत्साह प्रदर्शन के क्षणों मे वीररसमय रूप, दावानल-पान के प्रसग मे भयात्मकता, बकासुर के वक्षःस्थल का रुधिरपान करने के समय वीभत्समय रूप, विधाता की बुद्धि को अपनी लीलाओं के द्वारा विस्मय-विमुग्ध कर देने के कारण अद्‌भुतमयत्व और समस्त बाह्यवृत्तियों को अंतर्मुख कर स्थितप्रज्ञ की तरह शात चित्त से होने के क्षणों में शातिमय रूप होने के कारण ब्रजराज नवरसमय हैं।[२७] यहाँ तक कि केशव ने नायक और नायिका की सहायिका उन्ही सखियों (धाई, जनी, नाइन, नटी आदि) को माना है जो राधा और हरि की प्रेमसंबंधी बाधाओं को दूर करती हैं। सभी रसो के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए केशव और अधिक सजग है जिससे राधा और हरि का आश्रयालबनत्व किंवा विषयालबनत्व छूटने न पाए। यही कारण है कि प्रत्येक रस के आप कम से कम दो उदाहरण देते चलते हैं—जैसे, 'राधिका जू भयानक रस' और 'श्रीकृष्ण को भयानक रस' आदि। निष्कर्ष यह कि केशव के रसस्वरूप में दो बाते निताल स्पष्ट हैं—

१. स्थूलतः रस नौ हैं पर श्रृंगार रसों का नायक है और इसी में सभी रस अंतर्निविष्ट है।

२. सभी श्रृंगार पर्यवसायी रसों के आश्रयालंबन तथा विषयालंबन हरि और राधा हैं।

केशव की उपर्युक्त दोनों मान्यताओ पर क्रमशः संस्कृत के परंपरागत आचार्य भोजदेव तथा गौडीय वैष्णव आचार्य रूप गोस्वामी का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। भोजराज ने अहकार को रसोद्‌भव का मूल कारण माना है। इस अहकार को ही अभिमान और श्रृंगार कहा जाता है।[२८] भोज ने अहंकार का प्रयोग आत्मानुराग के अर्थ में किया है। इसी अर्थ मे बृहदारण्यकोपनिषद् मे कहा गया है कि मनुष्य को सभी सांसारिक पदार्थ, सभी मनुष्य किंवा उनके द्वारा व्यक्त शोक, क्रोध आदि विविध भाव आत्मसतोष के लिये ही प्रिय होते हैं।[२९] भोज ने अहकार की तीन स्थितियाँ भी बताई हैं और उसी के आधार पर रस की तीन कोटियाँ भी स्वीकृत की है। रस या अहकार की प्रथम कोटि है रूढाहंकारता अर्थात् मनुष्य में अहकार की अवस्थिति, रत्यादि भावो की परप्रकर्षता को रस नाम से निर्दिष्ट करना उसकी दूसरी कोटि (स्थायी भाव) है

२७. रसिकप्रिया, १।२।

२८. सरस्वती कंठाभरण, ५।१।

२९. बृहदारण्यकोपनिषद्, २।४।५।

तथा उसकी तीसरी कोटि है रति, हास आदि भावों की प्रेमरूप में परिणति। तृतीय कोटि में आकर ही वस्तुतः अहंकार शृंगार रस का रूप धारण करता है तथा शृंगार से ही हास्य, करुण आदि अन्य आठ रस उद्भूत होते हैं। अतएव भोज की दृष्टि मे शृंगार ही मूल रस है। अपने दोनों ग्रंथों (सरस्वतीकंठाभरण और शृंगारप्रकाश) मे शृंगार की मौलिकता का (केशव के शब्दों में नायकत्व का) उन्होंने स्पष्ट प्रतिपादन किया है।[३०] अतएव भोजदेव की दृष्टि में स्पष्टतः शृंगार रसराज या रसनायक है। भोज की शृंगारप्रियता तो इतनी अधिक बढ़ी हुई थी कि इन्होंने कवि के शृंगारी होने पर जगत् की रसमयता और उसके अशृंगारी होने पर जगत् की नीरसता का भी उल्लेख कर डाला।[३१]

भोज और केशव में मुख्य अंतर यह है कि जहाँ भोज ने रसों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर शृंगार की रसराजता प्रतिपादित की है, वहाँ केशव ने विवेचना की तह में गए बिना ही 'शृंगार को रसों का नायक' स्वीकार कर लिया है। इस अंतर का कारण भी स्पष्ट है। प्रथम तो यह कि भोजदेव अपनी कारिकाओं की व्याख्या के लिये गद्यात्मक वृत्ति का भी आश्रय ग्रहण कर लेते हैं और द्वितीय यह कि भोज का युग भी विश्लेषण और विवेचन का युग था जो सुविधा केशव को अप्राप्त थी। साथ ही भोज के ग्रंथ विद्वानों के लिये रचे गए थे। केशव का मात्र उद्देश्य इतना ही है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के ज्ञानसंभार को भाषा-काव्य-रसिकों तथा कवियों के पास पहुँचा दे। यों समासतः इन्होंने भोजदेव के विचारों को ही ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर दिया है।

केशवप्रतिपादित रसस्वरूप का दूसरा खंड है श्री कृष्ण और राधा का आलंबनत्व। केशव की इस मान्यता पर स्पष्टतः गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के आचार्य रूप गोस्वामी के हरिभक्तिरसामृतसिंधु और उज्जवलनीलमणि नामक ग्रंथों का प्रभाव है। रूप गोस्वामी ने भक्तिरस की मौलिकता की उद्भावना की और उसी में शृंगार-हास्य आदि परंपरागत नौ रसों को अंतर्भूत कर दिया। इन सभी रसों मे मधुर रस को उन्होंने भक्तिरसराट् कहा है।[३२] केशव का रसनायक शृंगार भी इस मधुररस का ही प्रकारांतर है। इसे केशव ने कविप्रिया मे हरिरस भी कहा है। पुनः रूप गोस्वामी ने भक्ति रस के प्रत्येक भेद के लिये कृष्ण और उनकी वल्लभाओं को ही आलंबन माना है।[३३] केशव ने भी कृष्ण

३०. शृंगारप्रकाश, १।३।

३१. सरस्वतीकंठाभरण, ५।३।

३२. उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ४।

३३. वही पृ०, ५।

को आलबन माना है, पर वल्लभाओं में इन्होंने राधा को ही आलबन के रूप में गृहीत किया है। रूप गोस्वामी ने कोटि संख्यक वल्लभाओं की कल्पना तो की है, पर उनमें राधा और चद्रावली को ही श्रेष्ठ घोषित किया है। इन दोनो में भी राधा को अधिक महत्व दिया गया है क्योकि वह महाभावस्वरूपा एव गुणो से वरीयसी है। इस मान्यता का आधार रूप गोस्वामी ने तत्रशास्त्र को प्रतिपादित किया है जिसमे राधा को कृष्ण की ह्लादिनी महाशक्ति का रूपातर माना गया है।[३४] आचार्य केशव ने राधा के आलबनत्व की इतनी सफाई तो नही दी पर आँख मूँद कर कृष्ण की वल्लभा राधा को आलबन स्वीकर कर लिया। तथापि इतनी सुयोजित व्यवस्था इन्होने अवश्य की कि प्रत्येक रस के उदाहरण प्रस्तुत करते समय कृष्ण और राधा को भूले नही और क्रमशः दोनों के आलबनत्व के आधार पर 'कृष्णजू को अमुकरस और राधाजू को अमुक रस' कह कर पृथक्-पृथक् छद रच डाले। केशव के रसनिरूपण की विवेषता यह है कि जिस रस-नायक शृंगार का अवातरभेद आपने अन्य रसों को बनाया है, लक्षण और उदाहरण देते समय उन्हे दृष्टिपथ से ओझल नही होने दिया है। लक्षणो मे कही कही त्रुटि भी आ गई है पर उदाहरण भलीभाँति दोनों पक्षो में सघटित हो जाते है। कहने का तात्पर्य यह कि हास्य रस का उदाहरण परपरागत हास्य-सामान्य में भी विनियुक्त है और रसनायक शृंगार (जो रूप गोस्वामी के मधुर रस का ही रूपातर है) मे भी। इसी प्रकार करुण, रौद्र, वीर आदि रसों के भी लक्षणों और उदाहरणों की स्थिति है।

इस प्रकार केशव का रस-स्वरूप-चिंतन सर्वथा मौलिक तो नहीं है किंतु प्रभाव भी सस्कृत काव्यशास्त्र के परपरागत सामान्य ग्रथों का नही है। भोज और रूप गोस्वामी जो परपरागत लीक से हटकर विवेचन करने चले हैं, उन्ही के विशिष्ट ग्रथों का प्रभाव ग्रहण कर केशव ने कुछ विलक्षणता प्रदर्शित कर दिखाई। उन आचार्यों की तरह विस्तृत निरूपण और विश्लेषण तो नहीं किया पर समासतः कथनीय सब कुछ कह डाला। केशव की मौलिकता यहाँ है कि उन्होंने पहली बार रसशास्त्र के उक्त दो स्रोतों से दो भिन्न मान्यताओं को संग्रथित कर एक अभिनव रसस्वरूप को विनिर्मित किया। अतएव इसे हम निःसकोचरूप से केशव की सूझ और मौलिक उन्मेष का निदर्शन मानने को प्रस्तुत हैं।

इसी प्रकार देव के काव्यरसायन में और दास के काव्यनिर्णय मे रस-

३४. वही, पृ० ७३।

परिपाक का स्पष्टीकरण रूपक के माध्यम से किया गया है। इन दोनों का मूलाधार भी हमे ढूँढ़ने पर अभिनवगुप्त की अभिनवभारती में प्राप्त हो जाता है। किंतु जितने अगों और उपागों को लेकर देव और दास ने रसनिष्पत्ति का साग रूपक बाँधा है, वैसा अभिनवगुप्त से सभव न हो सका था। अतएव उक्त दोनों आचार्यों के इस अश को भी हम मौलिक मानने के लिए बाध्य है। देव का कथन है कि पात्र (नायक, नायिका और सहृदय का हृदय क्षेत्र है अर्थात् इसका आधारस्थान है, सस्कार रूप से चित्त मे रहनेवाला स्थायी भाव वीज है जो स्नेह के सिंचन से क्रमशः अंकुरित, पुष्पित, और फलित होकर रसरूप मे परिणत हो जाता है। तात्पर्य यह है कि रसरूपी अमरतरु (कल्पतरु) के खेत, बीज, अंकुर, सलिल, शाखा, दल, फल, फूल, आदि आठ अंग हैं जिनके अस्तित्व मे ही रसामृत प्रस्रवित होता है। इन अगों मे क्षेत्र (खेत) तो पात्र है, हृदयगत सस्कार बीज है, विधाता की कृपा से अकुर योग होता है, स्नेह सलिल का स्थानापन्न है, विभिन्न भाव शाखाएँ है, छद पत्र हैं, शब्दालकार और अर्थालकार फूल हैं तथा आमोद (रसानुभूतिजन्य आनंद) ही फल है।[३५] विभाव, अनुभाव, सचारी आदि उपकरणों का रसपरिपाक मे स्थान निर्धारित करते हुए देव ने लिखा है कि स्थायी-भाव-रूप रसाकुर को विभाव उत्पन्न करते है, अनुभाव उसे अनुभव योग्य बनाता है अर्थात् उसे प्रकाशित करता है, सात्विक भाव उसे झलका देते हैं अर्थात् ये उसके विशेषक है तथा संचारी भाव बीच बीच मे उझकते है अर्थात् ये उसके विलासक हैं।[३६] रस को आमोदस्वरूप और अलौकिक बताकर देव ने उसकी आनदमयता और ब्रह्मास्वाद-सहोदरता की ओर भी सकेत किया है। दास ने भी इसी तरह राजा, राज-पुत्र, राजधानी, राजसंपत्ति, विधाता आदि प्रतीकों के आधार पर रूपक के माध्यम से इस स्वरूप का स्पष्टीकरण किया है।[३७] रसलीन ने भी एक ऐसा ही सांग रूपक बाँधा है। इन्होंने सहृदयों के मन में रहने वाली वासना को बीज, स्थायीभाव को अंकुर, परिस्थितिविशेष को उसे सींचने वाला जल, भ्रमर आदि को उद्दीपन तथा अनुकूल मनुष्यों (नायक-नायिका आदि) को विभाव, अनुभाव को तरु, व्यभिचारी भाव को क्षण क्षण मे फूलने वाले फूल, इन सब के सहयोग से उत्पन्न रस को मकरंद तथा सहृदयों और कवियों को जो अपने चित्त में इसका आस्वाद

३५. शब्दरसायन, प्र० ३, पृ० २८।

३६. वही, प्र० ३, पृ० २९।

३७. रससारांश, ५४०।

करते हैं, मधुप कहा गया है।[३८] इस प्रकार रसस्वरूप-सबधी इन रूपकों की अभिनवगुप्तीय प्रभाव के बावजूद भी अभिनवता नि सदिग्ध है।

ख- विभाव : नायक-नायिका-भेद

रीति कालीन आचार्यों के मध्य कतिपय आचार्यों ने नायिकाओं और उनकी सखियों के नूतन वर्गीकरण मे अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। यद्यपि उनके ये वर्गीकरण न तो अधिक उपादेय हैं और न अधिक युक्तिसगत ही, तथापि उन्होने प्राचीन स्रोतों का आधार लिए बिना भी कुछ -एक नवीन उद्‌भावनाएँ की और कुछ नया कहने का प्रयास किया —इस दृष्टि से उनका अपना महत्व है। तोष ने शृ गार सबधी उद्दीपन के अतर्गत भानुमिश्र की तरह सखियों और दूतियों का निरूपण किया है। इस प्रसग मे इन्होने दूतियो के कई मौलिक भेद प्रतिपादित किए हैं—पड़ोसिन, जनी, धाइ, चितेरी, रँगरेजिन, जड़ियारिन, चुरिहारिन, कोइरिन, नटिन, तमोलेन, धोबिन, हलवाइन, नाइनि आदि। रस-सिद्धात की दृष्टि से भले ही इनका कोई महत्व न हो, किंतु लोक जीवन के आधार पर ही इन भेदों को तोष ने गृहीत किया है। इसी प्रकार देव के रस-विलास मे देश, प्रकृति, सत्व, नगर, ग्राम आदि के आधार पर नायिकाओं के अनेक नए वर्गों की उद्‌भावना की गई है। देश भेद के आधार पर मध्यप्रदेश-वधू, मगधदेशवधू, कौशलदेशवधू, उत्कलवधू आदि २६ भेद प्रतिपादित हुए हैं। प्रकृति के आधार पर कफ प्रकृति, वातप्रकृति, पित्त प्रकृति और सत्व के आधार पर देवसत्व, मानुषसत्व, गधर्वसत्व, यक्षसत्व—यहाँ तक कि खरसत्व, कपिसत्व, काकसत्व आदि अनेक भेद भी किए गए हैं। नगर और ग्राम के आधार पर नागरी और ग्राम्या तथा नागरी के अवातरभेदों मे जौहरिन, पटहारिन, सुनारिन, गधिन, तेलिन आदि और ग्राम्या के अंतर्गत पुरवासिनी, ग्रामिनी और वनवासिनी आदि भेद बताए गए है। इन सारे नायिकाभेदों का मूलस्रोत अनुपलब्ध है। अतएव इन्हे देव की मौलिक उद्‌भावना का ही परिचायक मानना चाहिए। ये सारे भेद उपहासास्पद से तो लगते हैं पर नायिकाभेद के इतिहास मे अवश्य एक नवीन अध्याय जोडते है। कुमारमणि द्वारा प्रस्तुत शठ नायक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो भेद भी सर्वथा मौलिक है। पद्‌मनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी नामक चार नायिकाभेद सस्कृत के कामशास्त्रीय ग्र थों में तो प्रतिपादित हुए थे पर काव्यशास्त्रीय ग्रथों मे प्रायः इनका निवेश अभी तक नहीं हुआ था। रीतिकालीन आचार्य सोमनाथ ने पहली बार

३८. रसप्रबोध, ६-१२।

इनका समावेश अपने 'रसपीयूषनिधि' नामक ग्रंथ में किया और तदनंतर इन भेदों का निरूपण काव्यशास्त्र मे प्रचलित हो गया। अतएव इसे हम सोमनाथ की मौलिक उद्भावना तो न स्वीकार करेंगे किंतु काव्यशास्त्र को उनका यह महत्वपूर्ण योगदान अवश्य माना जा सकता है।

ग– अनुभाव, सात्विक भाव और संचारी भाव

केशव ने अपनी रसिकप्रिया में परंपरागत ३३ संचारी भावों के अतिरिक्त दो नवीन भेदो की उद्भावना की है--विवाद और आधि। ये नए दो भेद विवेचनीय है। आधि मानसिक व्यथा को कहते हैं। व्याधि (शारीरिक व्यथा) तो एक परंपरागत सचारी भाव पूर्वतः था ही, अतएव मनोव्यथावाची आधि को व्यभिचारी मानना अधिक असगत नही है। यह भावक्षेत्र के अधिक समीप भी है। फिर विवाद को व्यभिचारी भाव मानने मे कौन सी तुक है? प्रायः तर्क को व्यभिचारी रूप में प्रतिष्ठित देखकर केशव ने विवाद को भी इस वर्ग में संमिलित कर लिया। यदि केशव का आधार यही रहा है तो स्पष्ट है कि इन्होंने तर्क को अत्यधिक स्थूल अर्थ में गृहीत किया है। सच्ची बात तो यह है कि तर्क एक मनोदशा का नाम है।[३९] विवाद की स्थिति वैसी नही है। यदि केशव ने अपने नवोद्भावित व्यभिचारी भावों के लक्षण और उदाहरण भी दे दिए होते तो इन्हें समझने मे अपेक्षाकृत अधिक आसानी होती। पर वैसा वे न कर सके। अतएव विवाद आपाततः एक असगत व्यभिचारी भाव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त केशव ने कई संचारी भावों के नाम भी परिवर्तित कर डाले हैं - यथा, औत्सुक्य, सुप्त, विबोध, वितर्क, अमर्ष और असूया के स्थान पर क्रमशः उत्कठा, स्वप्न, प्रबोध, तर्क, कोह और निदा। जहाँतक पर्यायवाची शब्दो को रखने का प्रश्न है, केशव को दोषभागी नही माना जा सकता है। यह एक पूर्व-प्रचलित परंपरा है। भरत के सुप्त को विश्वनाथ ने भी स्वप्न और धनंजय ने भी वितर्क को तर्क कह दिया है। अमर्ष के स्थान पर कोह का प्रयोग भी कुछ पूर्व से ही प्रचलित था। कोह का क्रोध के अर्थ में प्रयोग रामचरितमानस में भी मिलता है। असूया के स्थान पर निंदा का प्रयोग भी प्रायः सोच समझकर किया गया है। एक तो दोनों में अर्थसाम्य भी है—'असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्'। निदा का प्रयोग जुगुप्सा नामक स्थायीभाव के स्थान पर केशव को करना था। अतएव उसका निवेश व्यभिचारी भावों की तालिका मे कर देना उन्हे आवश्यक प्रतीत हुआ। इसके पूर्व मम्मट ने निर्वेद नामक व्यभिचारी भाव को शात रस का

३९. साहित्यदर्पण, ३।१७१।

स्थायीभाव बनाया था अतएव केशव ने भी निंदा नामक व्यभिचारी भाव को लेकर वीभत्स रस का स्थायी भाव बनाना चाहा। फलतः व्यभिचारियों की तालिका में पहले इसका निवेश कर दिया। इस प्रकार केशव द्वारा परिवर्तित नामों का समाधान उपलब्ध हो जाता है। तथापि यह एक प्रकार की नवीनता ही मानी जायगी।

मतिराम, पद्माकर और बेनी प्रवीन द्वारा प्रस्तुत 'जृंभ' नामक सात्विक-भाव को तथा देव द्वारा प्रस्तुत 'छल' नामक सचारी भाव को अभी हाल तक कई आलोचक उनकी नवोद्भावना का परिणाम मानते रहे हैं, पर इनका आधार-स्रोत भानुदत्त की रसतरंगिणी होने के कारण इन्हें मौलिक नही माना जा सकता है। ग्वाल कवि ने संचारी भावों और सात्विक भावों के क्षेत्र में अनेक नई बातें कही हैं। इन्होने संचारियों के दो वर्ग माने हैं—तनज संचारी और मनज संचारी। आठ प्रकार के स्तभादि सात्विक भावो को इन्होंने तनज संचारी कहा है, क्योंकि इनका उद्भव तन से होता है पर इनके सहायक भी मनज सचारियों की तरह मन ही हैं। अन्य निर्वेदादि ३३ सचारी भावों को ग्वाल ने मनज सचारी माना है, क्योंकि इनका उद्भव मन से ही होता है और तन इनका माध्यम नही है। सात्विक भावों के वर्गीकरण में ग्वाल ने नवीनता प्रदर्शित की है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वचा इन पॉच इद्रियो के योग से प्रत्येक स्तंभादि तनज संचारी के पाँच पाँच भेद कर दिए हैं। इस प्रकार ग्वाल की दृष्टि मे सात्विक भाव मात्र आठ ही नहीं, प्रत्युत ४० प्रकार के (८×५=४०) होते हैं। ग्वाल के सात्विक-भाव-विवेचन में कई बाते चिंत्य हैं। प्रथम तो यह कि सात्विक भावों को अनुभावों के अतर्गत रखना चाहिए था, सचारी भावों के अतर्गत नही। चूँकि स्तभादि सात्विक भावों का प्रकाशन शरीर के माध्यम से होता है, अतएव उनमे स्थूलता भी आ जाती है और उन्हे आसानी से अनुभावों की कोटि मे लाया जा सकता है। मन की सहायता प्राप्त होने के कारण इन्हे सचारी भाव कहना सर्वथा असगत है। यों तो मन की सहायता से ही अनुभव भी शारीरिक चेष्टाओं के रूप मे व्यक्त होते हैं और तब इन्हें भी क्यों नही तनज संचारी माना जाय। थोड़ी देर के लिये सात्विक भावों को तनज सचारी मान भी लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि इनके चालीस भेद किए जॉय या नहीं? यदि पॉच ज्ञानेंद्रियों के योग से प्राप्त होने के कारण प्रत्येक सात्विक भाव के पाँच भेद माने जाँय तो फिर क्यो न कर्मेंद्रियों के आधार पर भी इनके भेद हों और तब इनकी सख्या ४० ही नही, अपितु ८० या उससे भी अधिक हो सकती है (क्योंकि अन्य अगों के आधार पर भी वर्गीकरण संभव है)। सच पूछिए तो यह बात समझ मे नहीं आती कि स्तभ, स्वेद आदि उद्भव में श्रोत्र-चक्षुषादि पाच ज्ञानेद्रियॉ किस

प्रकार योगदान करती हैं ? और यदि करती हैं तो अन्य अंगों को भी क्यों नहीं योगदायी माना जाय ? अतएव ग्वाल के सात्विक विवेचन में नवीनता का व्यामोह तो है, तत्वाभिनिवेशी दृष्टिकोण नही। ग्वाल ने सात्विक भावो के तो आठ या चालीस भेद माने पर अत में चलकर जृंभा नामक नवम भेद पर भी प्रकाश डाला।[४०] परोक्ष रूप से जृभा को भी आपने स्वीकार कर लिया है। अतएव इसे प्रतिपादन की अव्यवस्था ही कहना चाहिए। ग्वाल के संचारी-भावनिरूपण की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने प्रत्येक संचारी भाव के प्रकाशक अनुभावों का भी उल्लेख किया है। इसका आधार तो भानुमिश्र की रसतरंगिणी है किंतु यह एक उलझन में डालनेवाली चीज है। इसका कारण यह कि स्थायी भावों को ही विभाव, अनुभाव और सचारी अपने सयोग से रसरूप में परिणत करते हैं, संचारी भावों को नही। ऐसी स्थिति मे सचारी भावों को उक्त उपकरणों की कोई आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है ? इसके अतिरिक्त, भानुदत्त का अनुसरण करते हुए ग्वाल ने भी छल नामक चौंतीसवें संचारी का उल्लेख किया है और इसके लक्षण और अनुभाव भी इन्होंने बताए हैं। यहाँ भी कोई नवीनता नहीं है।

रसिकविहारी ने प्राचीन अवहित्था नामक संचारी भाव के स्थान पर 'आकृतिगोपन' शब्द का प्रयोग किया है। लक्षण मे कोई मौलिकता नहीं है पर नामकरण की मौलिकता निःसंदिग्ध है।

घ–स्थायी भाव

रीतिकाव्य मे स्थायीभावों का निरूपण तो परपरागत है, किंतु बीभत्स रस के प्रसंग में थोड़ी बहुत नवीनता दृष्टिगोचर होती है। देव ने बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा को स्वीकार तो किया किंतु उसके दो भेद कर डाले—घिन और निंदा। इनमे से प्रथम जुगुप्सा (घिन) तो स्थूल है जो घृणास्पद वस्तुओं को देखने सुनने पर उत्पन्न होती है किंतु द्वितीय जुगुप्सा (निंदा) सूक्ष्म है जो नीच कर्म करने और सुनने पर उत्पन्न होती है।[४१] डा० नगेंद्र ने निंदात्मक जुगुप्सा को ग्लानि माना है तथा आत्मग्लानि को करुण अथवा शात रस के अधिक निकट एवं दूसरों के प्रति ग्लानि को क्रोध के निकट प्रतिपादित किया है।[४२] मेरी धारणा है कि भावों का कोई भी प्रभेद शारीरिक नही हो सकता (सात्विक भावों को छोड़ कर), वे सभी मानसिक ही हैं। आत्मग्लानि हो या परग्लानि—

४०. रसरंग। १। ६२–६३।

४१. शब्दरसायन, पृ० ३६।

४२. देव और उनकी कविता, पृ० १३४–३५।

होती है उससे घृणा ही। वह घृणा चाहे शोक पर्यवसायी हो या क्रोध पर्यवसायी किंतु है वह मूलतः घृणा ही। यों तो तथाकथित शारीरिक घृणा भी परिणाम में खेद, शोक, क्रोध आदि भावों की जनक होगी ही। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने सड़क पर मल मूत्र जैसे घृणास्पद पदार्थ फेक दिए हैं और उस सड़क से गुजरने वाले पथिकों को घृणा हो रही है। क्या उसकी यह घृणा घृणित वस्तु फेकने वालों पर क्रोध के रूप मे परिणत नहीं होगी ? अतएव देव प्रतिपादित घिन और निंदा दोनों जुगुप्सा के ही रूप है और वे बीभत्स के स्थायी भाव बनने योग्य है। देव के पूर्ववर्ती केशव, तोष और परवर्ती जनराज ने जुगुप्सा को हटा-कर निंदा शब्द का प्रयोग किया था। परपरागत सस्कृत काव्यशास्त्र में तो जुगुप्सा शब्द का ही प्रचलन था। अतएव दोनों से प्रभाव ग्रहण कर जुगुप्सा को घृणा और निंदा नामक दो भेदों मे देव ने बॉट दिया है। वस्तुतः यह वर्गीकरण अनावश्यक है क्योंकि इस प्रकार अन्य स्थायी भावों के भी प्रभेद सभव हो सकते हैं। तथापि समग्रतः देव का स्थायी भाव निरूपण तर्कसगत एवं समीचीन है।

रीतिकालीन अन्य आचार्यों में स्थायी भाव के संबध मे न कोई मौलिक चिंतना है और न तदर्थ कोई प्रयास। परंपरागत बातों को ब्रजभाषा में दुहरा देने मे ही उनके आचार्यत्व का पर्यवसान है।

ङ–रसभेद

इस क्षेत्र में रीतिकालीन आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। केशव, तोष और रसलीन ने नौ रसों में प्रत्येक के सामान्यतः दो भेद माने हैं—प्रच्छन्न और प्रकाश। हमे अभी तक सस्कृत काव्यशास्त्र के किसी भी ग्रंथ में ये भेद उपलब्ध नहीं हुए हैं। रीतिकालीन लौकिक अलौकिक, स्वनिष्ठ परनिष्ठ, अभिमुख विमुख, परमुख आदि रसभेदों का स्रोत तो भानुदत्त की रसतरंगिणी है किंतु प्रच्छन्न और प्रकाश नामक रसभेद निश्चय ही इनकी मौलिक उद्भावना के परिणाम हैं। तोष और रसलीन ने भूत, भविष्य (भविष्यत्) और वर्तमान नामक मौलिक रसभेद भी प्रतिपादित किए हैं। इनके अतिरिक्त तोष ने शृंगार रस के संयोग और वियोग नामक परंपरागत भेदों के अलावा सामान्य और मिश्रित नामक दो नवीन भेदों की भी उद्भावना की है। सयोग के भी इन्होंने स्थान और परि-स्थिति के अनुसार कई नवीन भेद गढ़ लिए हैं—धाई के घर मिलन, सूने सदन को मिलन, जलविहार को मिलन आदि। यद्यपि सस्कृत के आचार्यों ने ऐसे भेदों की समस्या उठा कर भी इन्हे स्थान नहीं दिया था पर तोष ने सर्वप्रथम इन्हे काव्यशास्त्र में स्थान देकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। रसभेदों की दिशा मे देव ने भी कुछ नवीनता प्रदर्शित की है। करुण रस के इन्होंने

पहली बार पाँच भेद किए—करुण, अतिकरुण, महाकरुण, लघुकरुण और सुख-करुण। इनमे से चार भेद तो करुणा की मात्रा के आधार पर किए गए हैं और अंतिम सुखकरुण में सुख और दुःख के समिश्रण को प्रतिपादित किया गया है। देव ने शात रस के भी दो नवीन भेदों की उद्भावना की—भक्तिमूलक शात और शुद्ध शात। भक्तिमूलक शांत को भी भक्तिभेद के आधार पर वर्गीकृत कर प्रेमभक्ति, शुद्धभक्ति और शुद्ध प्रेम नामक तीन भेदों को स्वीकार किया गया है। शुद्ध शात को इन्होंने वैराग्यमूलक माना है। यद्यपि इस वर्गीकरण का कोई विशेष महत्व नही है, क्योंकि भक्तिरस और शातरस दो पृथक् परंपरागत रस हैं। एक का स्थायी भाव देवभक्ति है और दूसरे का है निर्वेद यानी वैराग्य। इन दोनों को साथ मिलाकर ही देव ने शात रस को विभाजित किया है। फिर भी प्रतिपादन का यह ढग अभी तक अछूता था, अतएव इसे हम देव के रस-निरूपण का मौलिक अश मान लेते है।

भिखारीदास के काव्यनिर्णय मे भी शृगार रस के नवीन वर्गीकरण उपलब्ध होते हैं। इन्होंने परपरागत सयोग और वियोग नामक द्विविध शृंगार को सम और मिश्रित नामक दो नूतन भेदों में बाँट दिया है। संयोग के दो अन्य भेद भी बताए हैं—सामान्य शृगार और सयोग शृगार। इन्होंने विहारवर्णन को संयोग शृंगार कहा है। इस विहारात्मक सयोग को भी नायकजन्य शृगार और नायिकाजन्य शृगार नामक दो भेदों में विभक्त कर लिया गया है। करुण विप्रलभ के स्वरूप में भी दास ने नवीनता प्रदर्शित की है जहाँ सस्कृत काव्य-शास्त्र में नायक और नायिका मे से किसी एक के स्वर्गप्रयाण और उसके लौट आने की सभावना से उत्पन्न खेद को करुण विप्रलभ स्वीकार किया गया है वहाँ दास ने निराशाजन्य ग्लानि से उद्भूत मरणेच्छा में करुण विप्रलंभ की स्थिति प्रतिपादित की है।

रसलीन ने पहली बार रसों की उत्पत्ति के तीन कारण माने हैं—दर्शन, श्रवण और स्मरण। इन्होंने लिखा है—

> **सो रस उपजत तीन विधि कविजन कहत बखान।**
> **कहुँ दरसन, कहुँ श्रवन, कहुँ सुमिरन तें परमान॥**

—रसप्रबोध, ३८

मेरी धारणा है कि परवर्ती काल में पं० रामचंद्र शुक्ल के 'रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक निबंध में प्रतिपादित प्रत्यक्ष रूपविधान, स्मृति रूपविधान और कल्पित रूपविधान नामक रसानुभूति की त्रिविध कोटियों के ऊपर रसलीन की मान्यता का स्पष्ट प्रभाव है। रूपसाहि ने वियोग शृंगार के न तो मम्मटानुसार

पाँच भेद किए और न विश्वनाथ के अनुसार चार भेद, प्रत्युत स्वेच्छा से आठ भेद कर डाले—प्रिय का देशातर गमन, गुरुशासन, अभिलाष, शाप, ईर्ष्या, दैवयोग, समय और उत्पात से उत्पन्न वियोग। इसी प्रकार उजियारे ने भी वियोग शृंगार के सात भेद प्रस्तुत किए है—गुरुनिदेश, अभिलाष, मान, शाप, प्रवास, समय और शत्रु से उत्पन्न। वियोग शृंगार के उपर्युक्त आठ या सात भेदों में कुछ तो प्रचीन हैं और कुछ रूपसाहि तथा उजियारे की नवोद्भावना की उपज हैं। शिवनाथ ने अनुकूल और प्रतिकूल रस के मिलन को 'दुसंधी रस' के नाम से अभिहित किया है। यद्यपि इसे एक रसदोष ही मानना चाहिए था, पर इन्होंने इसे एक अभिनव रसभेद के रूप मे ही प्रतिपादित किया है। फलतः त्रुटिपूर्ण होते हुए भी यह शिवनाथ की नवीनता का द्योतक तो अवश्य ही माना जायगा।

च–रसदोष

रसदोषों के निरूपण में केशव, देव और जनराज इन तीनों आचार्यों ने परंपरा की अपेक्षा नवीनता लाने का प्रयास किया है। केशव ने परंपरागत दस या ग्यारह दोषों को गृहीत नहीं किया है। इनके स्थान पर इन्होंने पाच अनरस या रसविरोधी दोषों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं–प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसंधान और पात्रादुष्ट। केशव प्रतिपादित ये पाच दोष (अनरस) आपाततः तो नवीन प्रतीत होते हैं किंतु ध्यान से देखने पर यह सिद्ध हो जाता है कि ये परंपरागत दोषों के ही नए नाम हैं। उनका क्रमिक विवरण प्रस्तुत है—

१ **प्रत्यनीक**—केशव के अनुसार शृंगार में वीभत्स के, वीर में भय के और करुणा में रौद्र के भिश्रण होने पर प्रत्यनीक नामक अनरस (रसविरोधी दोष) होता है।[४३] इसे हम ममटोक्त 'प्रतिकूल विभावादिग्रह' नामक रसदोष में भलीभाँति अंतर्भुक्त कर ले सकते हैं। शृगार और बीभत्स, वीर और भयानक तथा करुण और रौद्र परस्पर प्रतिकूल तथा विरोधी रस हैं। इन विरोधी रसों का साथ वर्णन किए जाने पर स्वभावतः इनके उपादानभूत विभावादिकों का भी संमिलित वर्णन होगा ही। प्रतिकूल विभावादिकों के वर्णन में मम्मट ने रसदोष माना है और उसी को केशव ने 'प्रत्यनीक' नामक अनरस कहा है। फलतः केशवोक्त प्रत्यनीक में अभिधान के अलावा कोई विशेष नवीनता नही है।

२. **नीरस**—केशव की दृष्टि में वहाँ नीरस नामक अनरस होता है जहाँ नायक

४३. रसिकप्रिया। ६।२।

और नायिका एक दूसरे से लिपटे तो रहते है किंतु कपट का आचरण करते हैं।[४४] तात्पर्य यह कि उन दोनों में शारीरिक मिलन तो होता है पर हार्दिक मिलन नही। इसे परपरागत शब्द मे 'रसाभास' कहा जा सकता है। प्रेमी प्रेमिका के शृ गारवर्णन में शरीर और हृदय दोनों का मिलन वाछित होता है। वियोग शृंगार में शरीर का मिलना तो नहीं रहता है पर हृदय की रागात्मकता और अधिक गाढी रहती है। मनोगत राग के अभाव मे शृ गार तो नही पर शृ गार-रसाभास का आस्वाद होता है। रस की यह एक हीन कोटि की स्थिति है। इसे ही केशव ने 'नीरस' नामक रसदोष कहा है।

३. **विरस**—केशव के अनुसार शोक और भोग के अर्थात् करुण और शृ गार के मिलित वर्णन मे 'विरस' अनरस होता है।[४५] तत्वतः यह प्रत्यनीक से सर्वथा अभिन्न है। केशव ने दो विरोधी रसों के मिश्रित वर्णन को प्रत्यनीक अनरस कहा है। करुण और शृंगार भी विरोधी रस ही हैं अतएव इसे भी प्रत्यनीक मे ही समाविष्ट कर लेना चाहिए था। फलतः मम्मटोक्त 'प्रतिकूलविभावादिग्रह' नामक रसदोष मे 'विरस' भी प्रत्यनीक की भाँति स्थान पा लेगा।

४. **दु.संधान**—नायक और नायिका मे एक की अनुकूलता और दूसरे की प्रतिकूलता रहने पर दुःसाधन या दुःसंधान नामक अनरस होता है।[४६] सच पूछिए तो यह भी मम्मटोक्त रसाभास से अपृथक् ही है।

५. **पात्रादुष्ट**—विना समझे बूझे अपने विचार को पुष्ट करने के लिये विशेषणों को बैठा देने पर पात्रादुष्ट नामक अनरस होता है। इसे हम मम्मट प्रतिपादित 'अपुष्टार्थ' में अंतर्भुक्त कर ले सकते हैं। जिन शब्दों के अनुक्त रहने पर भी प्रतिपाद्य अर्थ मे किसी तरह की बाधा नही होती है, उन्हे ही मम्मट ने अपुष्टार्थ दोष से ग्रस्त स्वीकार किया है। अतएव केशवोक्त पात्रादुष्ट में और मम्मटोक्त अपुष्टार्थ दोष में तत्वतः कोई अंतर नहीं है। यह ठीक है कि अपुष्टार्थ एक अर्थदोष है और पात्रादुष्ट एक रसदोष। चूँकि रस का आश्रय वाच्यार्थ ही है, अतएव अर्थदोष को भी मम्मट ने परोक्ष या परंपराप्राप्त रसदोष ही घोषित किया है—

४४. वही, १६।४।

४५. वही। १६।६।

४६. रसिकप्रिया। १६।८।

मुख्यार्थहतिर्दोषः रसश्च मुख्यः तदाश्रयाद्वाच्यः।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्याः तेन तेष्वपि सः॥
—काव्यप्रकाश, ७।४६ और वृत्ति।

फलतः अपुष्टार्थ में पात्रादुष्ट की गतार्थता न तो तर्करहित ही है और न अनुचित ही। इस प्रकार केशव के सभी रसदोषो का परपरागत दोषों मे अतर्निवेश हो जाता है।

देव ने भी शब्दरसायन मे कतिपय नवीन रसदोषो का उल्लेख किया है। उनके नाम है-सरस, नीरस, सामुख, विमुख, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ भीत, अभीत, उदास और उचित। ये परपरागत रसदोष नही है। सस्कृत काव्यशास्त्र के किसी भी सिद्धात ग्रथ में इन दोषो का प्रतिपादन नही हुआ है। इनके लक्षण भी देव ने नही दिए हैं। केवल उदाहरणों के आधार पर इन दोषो को उन्होंने अवगत कराया है। इनमे से सामुख, विमुख, स्वनिष्ठ और परनिष्ठ, इन चार भेदों को भानुमिश्र ने रसभेद रूप मे स्वीकृत किया है।[४७] विमुख रस को तो किसी तरह दोष माना भी जा सकता है क्योंकि इसमे भाव, विभाव और अनुभाव की प्रतीति कष्टपूर्वक होती है, पर सामुख, स्वनिष्ठ और परनिष्ठ रसों को रसदोष स्वीकार करना नितात असगत है। एकागी प्रेम को देव ने 'उदास' कहा है। इसे रसाभास के अतर्गत डाला जा सकता है। नीरस के भी कई भेद किए गए हैं—देश, काल, वर्ण, विधि, यात्रा, संधि, रस और भाव के विरोधानुसार आठ भेद वर्णित है। 'नीरस' के इन सारे भेदों मे से कतिपय को (देश और काल को) मम्मट-विश्वनाथ-सामत प्रकृतिविपर्यय दोष के अदर डाला जा सकता है। वर्णमूलक नीरस को श्रुतिकटु दोष के अतर्गत, विधिमूलक को विध्ययुक्त के अतर्गत, सधिमूलक को भावसधि के अंतर्गत तथा रस और भावमूलक को रसविरोध के अतर्गत समाविष्ट कर लिया जा सकता है। शब्ददोष और वाक्यदोष भी मम्मट के अनुसार परोक्षरूप से रस को अपकर्ष पहुँचाते ही हैं। अतएव इन्हे रसदोष मानने मे कोई क्षति भी नही है। अनौचित्य के आधार पर उचित नामक रसदोष की कल्पना की गई है। अनौचित्य तो सभी रसदोषों का मूल कारण है, ऐसा आनदवर्द्धन एव मम्मट ने भी स्वीकार किया है। सरस, भीत और अभीत नामक रसदोष तो नितांत अस्पष्ट हैं और इन्हे हम परपरागत दोषों में अंतर्भुक्त भी नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव का रसदोष निरूपण मौलिक होते हुए भी असंगत, शिथिल एव अस्पष्ट है। तथापि इनकी नवीनता में संदेह नहीं किया जा सकता है।

४७. रसतरंगिणी, तरंग ८, पृ० १८१।

जनराज ने मम्मटोक्त दस रसदोषों के अतिरिक्त दो अन्य रसदोष भी माने हैं। 'विभाव अनुभाव अकेलो' और 'रसविरुद्ध'। फलतः जनराज के रस-दोषों की सख्या बारह तक पहुँच जाती है। यद्यपि जनराज लिखित कवितारस-विनोद की एक हस्तलिखित प्रति मे मैंने दोषों की सख्या १६ पाई है। वस्तुतः एक प्रकार के दोष को अशतः विभक्त कर देने के कारण ही सख्या १६ तक पहुँच गई है। उदाहरणार्थ रस, सचारी और स्थायी की स्वशब्दवाच्यता को एक दोष न मानकर तीन दोष मान लिए हैं और विभावानुभाव की कष्टप्रतीति को दो। अतएव सख्या १६ हो जाती है, अन्यथा जनराज प्रतिपादित रसदोष यथार्थतः बारह ही हैं। मम्मट या विश्वनाथ की अपेक्षा जनराज की विशेषता यह है कि इन्होंने प्रत्येक रसदोष का पृथक् पृथक् लक्षण भी दिया है और उसे 'लक्षणनामप्रकाश' समझकर छोड़ा नही है। यह प्रभाव वस्तुतः भिखारीदास का है, जो जनराज के पूर्ववर्ती आचार्य थे। जनराज के अनुसार कतिपय दोषों के लक्षण इस प्रकार हैं—

सचारी को नाम (इसे इन्होंने साक्षात् रसदोष कहा है)—

जिहां संचारी भाव को नाम प्रगट ही होय।
ते साक्षात् दूषन सही, बर्नत है कवि लोई॥

—कवितारसविनोद, ६।१२६

रस को नाम—

कहत रसहि वाच्य सौ जिहाँ।
रसहि वाच्यदूषन है तिहाँ

—वही, ६।१२८

थाई भाव को नाम—

थाई कहियत परगट होय।
स्थाई दूषन जानौ सोय॥

—वही, ६।१२६

विभाव की प्रतीति कष्ट सों—

जित विभाव की कष्ट सों होत प्रतीत सुजान।
दूषन कष्ट विभाव सों कविजन करत वषान॥

—वही, ६।१३१

अनुभाव की प्रतीति कष्ट सों—

जिहाँ अनुभाव प्रतीत जो महाकष्ट सों होय।
ते कष्ट अनुभाव है दूषन-दूषन जोय॥

—वही, ६।१३३

प्रतिकूल विभाव—

ह्वै विभाव औरे जहाँ औरे भाव उसूल।
रसदूषन ठहराव मै सो विभाव प्रतिकूल ॥
—वही, ६।१३६

दीपति पुन पुन—

है रस प्रथमै सी मिटि जाई।
बहुरि आय बैही दरसाई ॥
दोष सु दीपति पुनि पुनि जानो।
रस बरनन मैं चाहि न आनो ॥
—वही, ६।१३८

इसी प्रकार अकांडप्रथन, रसच्छेद (अकाडच्छेद), अंगीविस्तार, अंगीविस्मृति, प्रकृतिविवर्जित, समयविरुद्ध, देशविरुद्ध, अनंगस्याभिधान, अमतनाम, रसविरुद्ध रस दोषों के लक्षण भी आपने दिए हैं। 'एक लो विभाव अनुभाव', जो एक नवीन रसदूषन है, का लक्षण इन्होंने नहीं दिया है। केवल इसके दो उदाहरण ही दिए हैं। रसानुभूति सर्वदा समूहालंबनात्मक होती है, अतएव केवल विभाव या अनुभाव रसनिष्पत्ति कराने में अक्षम है। यदि कोई असाधारण विभाव या अनुभाव हो तो बात दूसरी है। प्रकृति विपर्यय नामक रसदोष का लक्षण भी परंपरा सामत नहीं है। जनराज ने इसका शाब्दिक अर्थ ही गृहीत किया है अर्थात् प्राकृतिक विधानों की विवर्जना कर जो जोग घटित होते हैं वही यह दोष होता है। रसविरुद्ध कोई नवोद्‌भावित रसदोष नहीं है। मम्मट, विश्वनाथ तथा अन्य परंपरागत आचार्यों ने मित्ररस और विरोधीरस का उल्लेख किया है। उसी को उठाकर जनराज ने रसदोषों की तालिका मे समाविष्ट कर लिया है और रसविरुद्ध नामक एक अतिरिक्त रसदोष की कल्पना कर ली है। यों मम्मट प्रभृति आचार्य भी विरोधी रसों के वर्णन में दोष मानते ही है। आशिक त्रुटियों के बावजूद भी जनराज का रसदोष निरूपण समीचीन ही कहा जायगा।

इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों मे कुछ एक आचार्य ऐसे है जिन्होंने रस-दोषों के निरूपण प्रसंग में थोड़ी बहुत नवीनता प्रदर्शित की है। शेष आचार्य तो परंपरा की लीक पर ही चलते रहे और उन्ही को अपने शब्दों मे दुहराते रहे।

७. सर्वेक्षण

रीतिकालीन रसधारा की पूर्वपीठिका संस्कृत रसशास्त्र मे निहित है। अतएव उसका संक्षिप्त सर्वेक्षण भी इस प्रसंग में अनावश्यक न होगा। कालखड की दृष्टि से संस्कृत रसशास्त्र के दो भाग हैं—ध्वनिपूर्वकालीन और ध्वन्युत्तरकालीन।

दोनों भागों में रससिद्धांत की भिन्न भिन्न स्थितियाँ रही हैं। ध्वनिपूर्व काल में भी रससिद्धात की दो धाराएँ रही है। प्रथम धारा वह है जब भरत ने मात्र दृश्य काव्य मे अभिनय की दृष्टि से रसतत्व को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया था। द्वितीय धारा के अतर्गत भरत के बाद अलंकारादि सम्प्रदायों का उदय हुआ और रसतत्व को श्रव्य काव्य में भी स्वीकृति मिली। यह स्वीकृति उसे गौण रूप में मिली, यानी रस को कभी अलंकार का अवातरभेद माना गया—कभी रीति का और कभी गुण का। ध्वन्युत्तर काल मे भी मान्यता और महत्व की दृष्टि से दो धाराएँ मिलती है—कभी तो रसध्वनि के रूप मे असलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत इसका निरूपण किया गया और कभी इसे स्वतत्र अस्तित्व प्रदान किया गया। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि के रूप मे भी दो तरीकों से रसविवेचन किया गया है। आनंदवर्द्धन और उनके आनुयायी मम्मट ने ध्वनि के अतर्गत ही रस-विवेचन किया पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रस को असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि मानकर भी पृथक् परिच्छेद मे रसविवेचन किया। परिणामतः विश्वनाथ के माध्यम से रस ध्वन्यंगभूत होकर भी अपेक्षाकृत अधिक स्वातत्र्य और प्रशस्ति का भागी बन सका। काव्य की रसात्मकता चरितार्थ हुई। ध्वन्युत्तर काल की दूसरी धारा में रस को सर्वतंत्रस्वतंत्र रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। भानुदत्त की रसतरंगिणी में इसकी परिणति दृष्टिगोचर होती है। सच पूछिए तो भरत के रसवाद की जो प्रशस्त धारा कालक्रम में विचार वैविध्य के अवरोध से अवरुद्ध हो गई थी, भानुदत्त के भगीरथ प्रयास से पुनः तरंगायित हो गई।

रस के उपकरणों को लेकर सस्कृत काव्यशास्त्र मे अत्यल्प हेर फेर हुए हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में जिन उपादानों का निर्धारण कर दिया था, जगन्नाथ और भानुदत्त के युग तक प्रायः शब्दभेद से उन्हीं का पुनराख्यान अथवा विवेचन विश्लेषण होता रहा। केवल आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक नायिकाओं के भेदों को लेकर अनेक परिवर्तन परिवर्द्धन होते रहे। सस्कृत रसशास्त्र में आचार्यों के मध्य दो विषयों को लेकर अधिक विचारभेद पाए जाते हैं। रसास्वाद की प्रक्रिया और रसभेद, ये दोनों विषय ही उनके विवाद के मुख्य केंद्रविंदु रहे हैं। रसनिष्पत्ति को लेकर उत्पत्तिवाद, अनुमानवाद, भोगवाद, अभिव्यक्तिवाद और दोषवाद प्रभृति सिद्धातों की अवतारणा हुई। इस प्रक्रम में दर्शनशास्त्रीय अनेक विचारों के संभार से रसशास्त्र को पूर्ण गंभीरता प्रदान की गई। रसभेद के संबंध में भी संस्कृत के आचार्यों की मुख्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है—प्रथम रसों की संख्या के विस्तार की और द्वितीय रसों की संख्या के सकोच की।

आरंभ में भरत ने तो मात्र आठ रस स्वीकार किए। उद्भट ने शांत नामक

नवम रस को भी जोड़ दिया। अभिनवगुप्त ने तो नाट्यशास्त्रीय उद्धरणों के आधार पर भरत को ही शात रस के प्रवर्तन का श्रेय दिया है, किंतु उस अंश के प्रक्षिप्त होने की संभावना के आधार पर उद्भट को ही इसका अग्रणी माना जाता है। दंडी ने माधुर्य गुण के अतर्गत वाक्रस और वस्तुरस नामक दो नूतन भेदों का विवेचन किया। रुद्रट ने प्रेयान् नामक अतिरिक्त रस की उद्भावना कर रस सख्या को दस तक पहुँचा दिया। भोज ने मति और गर्व नामक दो अभिनव स्थायी भावों के आधार पर उदात्त और उद्धत नामक दो नए रसों की कल्पना की। अभिनवगुप्त ने स्नेह और लौल्य नामक दो सर्वथा नवीन रसों को स्वीकृति प्रदान की। मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी प्रभृति गौडीय आचार्यों ने भक्तिरस को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। भानुदत्त ने प्रवृत्तिमूलक माया रस की उद्भावना की। इन नवोद्भावित रसों को लेकर आचार्यो के बीच खंडन मडन भी खूब हुए।

जिस प्रकार रस-सख्या-विस्तार की प्रवृत्ति संस्कृत के आचार्यों में रही, उसी प्रकार रस-संख्या-संकोच की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। स्वयं भरत ने स्वस्थापित आठ रसो मे मूल रस चार ही माने थे। अग्निपुराणकार व्यास और शृंगार-प्रकाश के प्रणेता भोज ने शृगार को महत्व ही नही दिया प्रत्युत अन्य सभी रसों को उसमे अंतर्भुक्त भी कर दिया। महाकवि भवभूति ने करुण को ही एक मात्र रस स्वीकर किया। विश्वनाथ के अतिवृद्ध प्रपितामह नारायण ने अद्भुत रस मे ही सारे रसों को समाविष्ट बताया। गौड़ीय आचार्य रूप गोस्वामी ने भक्ति-रस को ही एकमात्र रस स्वीकार किया तथा अन्य सभी रसों को पाँच प्रकार के मुख्य भक्तिरसों और सात प्रकार के गौण भक्तिरसों में विनिबद्ध कर डाला। अतएव रसभेद की दिशा में संस्कृत के रसशास्त्रियों के बीच जैसे संख्या प्रसारण की प्रवृत्ति थी, वैसे ही सख्या के आकुंचन की भी।

पहले ही कहा जा चुका है कि हिंदी का रीतिकालीन रसशास्त्र संस्कृत काव्य-शास्त्र की पीठिका पर ही उद्भूत हुआ है। स्वभावतः सस्कृत रसशास्त्र की विभिन्न धाराओं के अवशेष इसमे पाए जाते है। रीतिकालीन समस्त रसशास्त्रियों को निरूपण वैविध्य के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त पाते हैं—सर्वांग निरूपक आचार्य, सर्व-रस-निरूपक आचार्य और शृंगार-रस-निरूपक आचार्य। सर्वांग-निरूपक आचार्य काव्य के सभी अगों का निरूपण करते हैं और रस को एक अंग मानकर चलते हैं। चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि प्रभृति इसी कोटि के आचार्य हैं। ये ध्वन्युत्तरकालीन मम्मट और विश्वनाथ से प्रभावित दीखते हैं। उक्त आचार्यो मे भी कुछ तो मम्मट की भाँति असंलक्ष्यक्रम-

व्यग्य ध्वनि के अतर्गत रसनिरूपण करने वाले है और अन्य विश्वनाथ की तरह रस को ध्वनि का प्रभेद मानकर भी उसे निरूपण की दृष्टि से अपने ग्रथो मे स्वतत्र स्थान प्रदान करते है। भिखारीदास, कुमारमणिभट्ट, जनराज प्रभृति कुछ एक आचार्यों ने इस दिशा मे विश्वनाथ का अनुसरण किया है और चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ आदि ने मम्मट का। सर्व-रस-निरूपक आचार्य वे है जिन्होंने काव्य के दशविध अगों में केवल रस लेकर ही अपने ग्र थ रचे। इन्होंने सामान्यतः नौ रसो की निरूपणा की है। आचार्यों का यह वर्ग भानुदत्त की रसतरगिणी से प्रभावित है। भानुदत्त से इनकी भिन्नता मात्र इतनी है कि जहाँ श्रृंगार के आलबन नायक नायिकाओं के विवरण के लिये भानुदत्त ने रसमजरी नामक पृथक् ग्रथ लिखा, वहाँ रीतिकालीन सर्व-रस-निरूपक आचार्यों ने श्रृंगार-रस के निरूपणप्रसग मे ही नायक-नायिका-भेदों का भी विस्तारपूर्वक निवेश कर दिया। इस कोटि के आचार्यो मे तोष, देव, रसलीन, पद्माकर, ग्वाल प्रभृति अग्रणी है। इनके अतिरिक्त तीसरे वर्ग के वे आचार्य है जिन्होने मात्र श्रृंगार रस और उसके आलंबन नायक नायिकाओं का ही निरूपण अपने ग्रथों मे किया। इस वर्ग के आचार्यो मे कृपाराम, मतिराम, सुखदेव प्रभृति उल्लेखनीय हैं। इस वर्ग के ग्रंथों की मूल धारा भी भानुदत्त की रसमजरी में ही उपलब्ध होती है। यों भोज के श्रृंगारप्रकाश और व्यास के अग्निपुराण को इस वर्ग का आधार माना जा सकता है, पर विषयनिरूपण की दृष्टि से ये आचार्य भोज और व्यास की अपेक्षा भानुदत्त, विश्वनाथ और विद्यानाथ के ग्रथो से अधिक प्रभावित दीखते है। तत्वतः इस धारा का मूल कारण है रीतियुग की अतिशय श्रृंगार-प्रियता। अन्य वर्गों के आचार्यो मे भी सभी श्रृंगार को रसराज मानते हैं। परिणामस्वरूप रसराज श्रृंगार के स्वतत्र निरूपण के लिये आचार्यों का एक भिन्न वर्ग ही उठ खड़ा हुआ। ऊपर रीतिकालीन रसनिरूपक आचार्यों के जो तीन वर्ग स्वीकृत किए गए है, इनमें व्यतिक्रम भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ भिखारीदास ने एक ओर सर्वरस निरूपक 'रससारांश' लिखा तो दूसरी ओर श्रृंगार-रस-निरूपक 'श्रृगारनिर्णय' और अनेकाग निरूपक 'काव्यनिर्णय' भी। देव की भी यह स्थिति है। अतएव आचार्यों की अपेक्षा उनके ग्रथों को ही उक्त वर्गों मे बाँधना श्रेयस्कर है। उपर्यकित तीन धाराओं से भिन्न एक चतुर्थ धारा भी केशव की रसिकप्रिया में उपलब्ध है। इन्होने गौड़ीय भक्तिरस और परपरागत नौ रसों के मिश्रण से एक विलक्षण रसधारा प्रवाहित की जिसमें आलंबन तो ब्रजराज कृष्ण है पर हैं वे नवरसमय तथा श्रृंगार नायक।

इतना निश्चित है कि हिंदी के रीतिग्रंथों में भी रसनिरूपण की विविध

धाराएँ एव पद्धतियाँ उपलब्ध है जिनमें से कुछ तो सस्कृत की रसधाराओं से प्रभावित है और कुछ हैं स्वतः उद्भूत। मतिराम, कृपाराम आदि की मात्र शृंगार-रस-निरूपण-पद्धति और केशव की रसपद्धति को मैं स्वतः उद्भूत ही मानता हूँ। मतिराम, कृपाराम प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों को भानुदत्त की रस-धारा से भिन्न कोटि का मैं इस अर्थ में मानता हूँ कि जहाँ भानुदत्त ने नवरस-निरूपक और शृंगार-रस-निरूपक रसतरंगिणी और रसमंजरी नामक दो भिन्न ग्रंथ लिखे वहाँ रीतिकालीन मतिराम प्रभृति आचार्यों ने केवल शृंगाररस-निरूपक ग्रंथ ही लिखे। केशव की रसपद्धति की स्वतंत्रता मे तो किसी प्रकार का संदेह किया ही नही जा सकता।

शास्त्रीय विवेचन के उत्कर्ष की दृष्टि से हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों की मौलिकता नगण्य है। इनकी अपनी सीमाएँ थी। एक तो इनके पास विवेचनात्मक गद्य का माध्यम नही था, दूसरे विवेचन की सूक्ष्मता में जाने की न तो इनके पास शक्ति थी और न उस युग के साहित्यप्रेमी राजाओं, रईसों, सामंतों और सामान्य पाठकों मे तदनुकूल धैर्य ही था। ग्रंथप्रणयन के प्रयोजन पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा से इनकी प्रवृत्ति मे भी भिन्नता रही। उद्देश्य और प्रयोजन की भिन्नता के कारण इनकी विवेचन पद्धति मे भी अतर आया। इनके अतिरिक्त, संस्कृत के रसशास्त्र मे ही रसमीमासा चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी। इन्ही प्रतिबंधों से बाधित होकर इन्होंने रसग्रंथ लिखे। अतएव रसशास्त्रीय विषयों का व्रजभाषा के माध्यम से पुनराख्यान ही इनके आचार्यत्व का मुख्य उद्देश्य रहा। यही कारण है कि इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के परवर्ती ग्रंथों को ही उपजीव्य बनाया, क्योंकि इन ग्रंथों में खंडन मंडन का अभाव है तथा विषयों का प्रतिपादन भी सरल रीति से किया गया है। तथापि कहीं तो 'घुणाक्षरन्याय' से और कही आयास-पूर्वक भी इन्होंने कई नूतन उद्भावनाएँ प्रस्तुत कर दिखाई। उदाहरणार्थ, देव ने देश, प्रकृति, सत्व, नगर, ग्राम आदि के आधार पर नायिकाओं के कई वर्गों और उनके भेदों की उद्भावना की। तोष ने दूतियों के ही अनेक नवीन भेद गढ़ डाले। केशव ने विवाद और आधि नामक नूतन संचारी भावों की उद्भावना की। ग्वाल कवि ने परंपरागत आठ सात्विक भावों को चक्षु, श्रोत आदि पाँच ज्ञानेंद्रियों के आधार पर वर्गीकृत कर उनकी संख्या चालीस तक पहुँचा दी। इसी प्रकार रसभेदों की दिशा में केशव, तोष और रसलीन ने नौ रसों मे से प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो नवीन भेद स्वीकार किए। देव ने पहली बार करुण रस के पाँच भेद प्रतिपादित किए--करुण, अतिकरुण,

महाकरुण, लघुकरुण और सुखकरुण। भक्तिमूलक शात और शुद्ध शात भी देवकृत शात रस के नवीन भेद हैं। रसदोषों के संबंध मे भी केवश और देव की उद्भावना शक्ति का परिचय मिलता है। केशव ने प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसाधान और पात्रादुष्ट नामक सर्वथा नवीन रसदोष बताए है और देव ने सरस, नीरस, समुख, विमुख, स्वनिष्ठ, परनिष्ट, भीत, अभीत, उदास और अधिक नामक दस नूतन रसदोषों की उद्भावना की है।

उपर्युक्त कतिचित् उद्भावनाओ के बावजूद भी रीतिकालीन रसशास्त्र को मौलिकता का श्रेय नही दिया जा सकता है। इसे मौलिक होने और विषयवस्तु को अग्रसरित करने का श्रेय तभी मिलता, यदि इस युग के रसशास्त्र ने रस-स्वरूप, रसनिष्पत्ति, और साधारणीकरण जैसे गभीर विषयों के चितन क्षेत्र मे प्रवेश किया होता। कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन कर रसशास्त्र की नूतन व्याख्या का अभी इन्हें पर्याप्त अवकाश प्राप्त था किंतु रीतियुगीन आचार्यों का ध्यान इस ओर भी न गया। इन्होंने वर्गीकरण की दिशा में भी न्यूनाधिक नवीनता प्रदर्शित करनी चाही, पर सस्कृत युग मे ही यह कार्य पराकाष्ठा को पार कर चुका था। अतएव इनके उद्भावन प्रयास विफल ही रहे और ये मौलिक होने के विरुद से बंचित रह गए।

तथापि अन्य दृष्टियों से हमें रीतिकालीन रसशास्त्र का महत्व स्वीकार करना ही होगा। प्रथम तो यह कि जगन्नाथ तक आकर संस्कृत काव्यशास्त्र में गत्यवरोध ही नही बल्कि शास्त्रीय चितन की धारा ही हमेशा के लिये सूख गई थी। ऐसी स्थिति में रीतिकालीन आचार्यों ने रसशास्त्रीय चिंतना को हिंदी के माध्यम से जीवित रखा। यदि इन्होंने इस परंपरा को कायम न रखा होता तो प्रायः प्राचीन रससिद्धात से आज हमारा संपर्क ही छूट गया होता। इस युग की दूसरी उपलब्धि यह है रस को ध्वनि के अंतर्भोग से मुक्त कर प्रशस्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया। यह ठीक है कि कतिपय सर्वांग निरूक आचार्यों ने इस दिशा में योग नही दिया और विसवादी स्वर अपनाया किंतु अन्य वर्ग के आचार्यों ने एक स्वर से रसस्वातत्र्य का जयघोष किया। इन आचार्यों की अन्यतम उपलब्धि यह भी है कि इन्होंने रससामान्य की धारा को विशुद्ध शृंगार धारा मे मोड़ दिया और इस प्रकार व्यास और भोज की शृंगार-रसधारा को, जो कालक्रम में अवरुद्ध हो गई थी, पुनः प्रवाहित किया। कम से कम इन उपलब्धियों के कारण भी रीतिकालीन रसशास्त्र का महत्व हमें स्वीकार करना ही होगा।

यदि हम सैद्धातिक पक्ष को छोड़ कर इनके द्वारा रचित अभिनव उदाहरणों पर दृक्पात करें तो रीतिकालीन रसशास्त्र की महत्ता संस्कृत की अपेक्षा भी अधिक प्रतीत होगी। संस्कृत काव्यशास्त्र में पद्धति यह थी की आचार्यगण लक्षणात्मक कारिकाएँ, वृत्तियाँ और भाष्य तो स्वरचित प्रस्तुत करते थे पर उनके विश्लेषणार्थ जिन उदाहरणों को गृहीत करते थे वे प्राचीन और समकालीन काव्यकृतियों के अंश होते थे। रीतिकाल के सभी आचार्य चूँकि कवि भी थे अतएव वे अपनी कवि प्रतिभा का परिचय स्वरचित उदाहरणों के द्वारा ही देते थे। यदि रीतिकालीन काव्यशास्त्र किवा रसशास्त्रीय अश से ही चुने चुनाए उदाहरणों को सकलित किया जाय तो वह सकलन सौंदर्य, प्रभाव, भाषासौष्ठव आदि अनेक दृष्टियों से अभिनव और महत्वपूर्ण होगा। रीतिकालीन आचार्यों की इतनी देन तो नितात निःसदिग्ध है।

*

रीतिकालीन रसशास्त्र

[द्वितीय खंड]

चिंतामणि

१.

असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि आनि रसादिक चित्त।
इते आदि पद लभ्य जे तिन्हें गनावत मित्त॥
प्रथमहि रस पुनि भाव गनि तिनके पुनि आभास।
भाव सांति अनभाव को उदै बखानि प्रकास॥
भावसंधि पुनि सबलता भावन की मन आनि।
असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि तिनके भेद बखानि॥

कविकुलकल्पतरु, ५।४५-४७

२.

इन शब्दन तें कहत हूँ बंधन[1] रस को होइ।
यातें रस सब ठौर मैं व्यंग्य कहत सब कोइ॥

वही, ८।१५३

३.

सगुनालंकारन सहित दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ॥
जे रस आगे के धरम ते गुन बरने जात।
आतप के ज्यों सूरतादिक निहचल अवदात॥
सबै अर्थं तबु वर्णिये जीवित रस जिय जानि।
अलंकार हारादि ते उपमादिक मन आनि॥
श्लेषादि गन सूरतादिक से मानों चित्त।
वरनौ रीति सुभाव ज्यौ वृत्ति वृत्ति सी मित्त॥
पद अवगुन विश्राम सों सज्जा सज्जा जानि।
रस आस्वादन भेद जे पाक पाक से मानि॥
कवित पुरुष की साजु सब समुरु लोक की रीति।
गुन विचार अब करत हौ सुनौ सुकवि करि प्रीति॥

वही, १।७-१२

४.

बत कहाउ रस मै जु है कबित कहावै सोइ।
[गद्य पद्य द्वै भाँति सो सुरबानो मै होइ]॥

वही, १।४

१. प्रतिबंध, बाधा।

५.

'यह रस पुनि सु अलक्ष्यक्रमव्यंग आपु धुनि हारि।
शृंगारादि विशेष पद बाचक कहत विचारि ॥
वाचक पद रसु यह जो सब साधारन नाम।
चिंतामनि कवि कहत है समुझौ बुध अभिराम ॥
इन शब्दन तें कहत हूँ बंधन रस की होइ।
या तें (हि) रस ठौर में व्यंग्य कहत सब कोइ :।

'वही, ८।१५०-१५२

६.

थाई सामाजिक हिय बसत वासनारूप ॥
व्यक्त विभावादिकनि मिलि रस ह्वै मिलत अनूप ॥

वही, ५।६६

७.

रत्यादिक हेतु जो काज और सहकारि।
जग में तेई कहत हैं, आन नाम निरधारि ॥
विभावनादिक अलौकिक व्यापारानि सु मित्त।
से विभाव अनुभाव अरु सचारि धरि चित्त ॥'

वही, ५।६२-६४

८.

साधारण व्यापार बल सब साधारन होइ।
नियत प्रभातहि मे जदपि तदपि अपरिमित होइ ॥

वही, ५।६१

९.

गनि विभाव अनुभाव अरु संचारीन मिलाइ।
जित थाई है भाव जो सो रस रूप गनाइ ॥

वही, ५।४८

तोष

१.

कवित बीचिका बीच ही अर्थांतर[1] गन जोइ।
सुलभ सुमति[2] को कुमति[3] को दुरलभ जानो सोइ ॥

सुधानिधि, छंद ७

१. रस। २. सहृदय। ३. असहृदय।

२.

दंपति जहँ लों सुख लहै कामकला के फंद।
सो सिंगार में प्रेम है थाई आनँद कंद॥

वही, छंद १२

३.

रसराज श्रीसिगार रस में केलि प्रेम प्रकास है।
अरु हँसी आवै स्वाँग तर्क बिलोकि हँसिबो हास है॥
उतसाह वर्धन रोमरोमनि चारि बिधि को बीर है।
रन दान दाया सत्य चारि प्रकार बरनत धीर है॥
अनहोनि लषि आचरज करिबो वैसु अद्भुत जानिये।
करि कोप रन कर्तव्य उद्यत बोल रौद्र बखानिये॥
घिन होत लखि सुनि मलिनता वीभत्स को यह हाल है।
भय उपल लखि सहमै जहाँ सोइ या भयानक ख्याल है॥
हरिभक्ति सज्जन संग तीरथ साधुता सुभ सांत है।
यहि भाँति रस के लक्षनै कहि लक्ष्य की वीख्यात है॥ [1]

वही, छंद ४४१-४४६

कुलपति

१.

मिलि विभाव अनुभाव अरु, संचारी सु अनूप।
व्यंग कियो थिर भाव जो, सोई रस सुख भूप॥

रसरहस्य, ८।३४

२.

नृत्य कवित्त देखत सुनत भये आवरन भंग।
आनँद रूप प्रकाश है, चेतन ही रस अंग॥

वही, ३।३५

३.

जैसो सुख है ब्रह्म को मिले जगत सुधि जाति।
सोई गति रस में मगन भये सुरस नौ भाँति॥

वही, ३।३६

१. तोष ने चर्चा तो नौ रसों की की है (अब नवहूँ रस को कहूँ लक्षन लक्ष्य विचार) पर विवरण देते समय इन्होंने करुण रस को विस्मृत कर दिया है। उपर्युक्त उद्धरण में करुण रस का उल्लेख नहीं है।
२. रजोगुण–तमोगुणजन्य मलिनता

४.

कहुँ विभाव, अनुभाव कहुँ, कहुँ संचारी भाव।
न्यारेऊ प्रगटत रसहि, मिलहि सुपूरन दाव।।

वही, ३।५३

देव

१.

प्रथम शृंगार नौहू रसनि को सार जाको
नायका अधार सो जो नायक के संग है।
संयोग वियोग सो सिंगार रस द्वै विध वियोग
चारि विधि औ संयोग एक अंग है।
पूरवानुराग मान प्रवास करुन मिल्यो
चौविध वियोग दस दसनि के रंग है।
हावभाव लोग उपभोग सविलास हास
विविध संभोग सुखसागर तरंग है।।

सुखसागरतरंग, पद सख्या ३६

२.

जो विभाव अनुभाव अरु विभिचारिनु करि होइ।
थिति की पूरन वासना, कुकवि कहत रस सोई।।

—भावविलास, विलास ३, पृ० ६५

३.

जोहि प्रथम अनुराग में, नहिं पूरब अनुभाव।
तो कहिये दंपतिनु के, जन्मांतर के भाव।।
ताहि विभावादिकन ते, थिति संपूरन जानि।
लौकिक और अलौकिकहि, द्वै विधि कहत बखानि।।
नयनादिक इंद्रियनु के जोगहिं लौकिक जानु।
आतम मन संयोग तें, होय अलौकिक ज्ञानु।।

वही, विलास । ३, पृ० ६५

४.

चित थापित थिर बीज विधि, होत अंकुरित भाव।
चित वदलित, दल, फूलि फलि, बरसत सुरस सुभाव।।
खेत, बीज, अंकुर, सलिल, साखा, दल, फल, फूल।
आठ अंग रस अमर तरु, चुवत अमी रस मूल।।
खेत पात्र, प्रारब्ध, विधि, बीज सुअंकुर जोग।

सलिल नेह, भाव सु विटप, छंद पत्र परिभोग ।।
अलंकार शब्दार्थ के फूल फलनि आमोद ।
मधुर सुजस रस अमर तरु, अमर अमी रसमोद ।।

शब्दरसायन, प्रकाश ३, पृ० २८

५.

रस अंकुर थाई, विभाव रस के उपजावन,
रस अनुभव अनुभव, सात्विको रस झलकावन,
छिन छिन नाना रूप, रसनि संचारी उझके ।

वही, प्रकाश ३, पृ० २९

६,

कहे थाई भाव औ विभाव अनुभाव भाव
सातुक[1] संचारी हाव कारन शृंगार के ।
दंपति प्रथम प्रेम अंकुर सुथाई भाव
प्रथम श्रवण दरसन अधिकार के ।
आलंबन उद्दीपन द्विविध भाव अनुभाव
भाव बहु सातुक सुआठही प्रकारके ।
तैंतिस संचारी दश हाव रस पोषक
प्रकाशक विशेषक[2] विलासक[3] विहार के ।।

सुखसागरतरंग, छंद ३८, पृ० १३

रसिकभट्ट

१.

काव्यप्रकाश विचार कछु रचि भाषा में हाल ।
पंडित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हौ 'रसिकरसाल' ।।

रसिकरसाल, १।४

२.

मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव ।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ।।

वही, ३।१०

१. सात्विक । २. विशेषता पहुँचाने वाला । ३. आस्वादयोग्य बनाने वाला ।

३.

रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेषहि तें सबै भाव प्रभृति रस लेख॥
आनंद अंकुर तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह वढ़ि रस होत विचारि॥

वही, ३।२-३

४.

ज्यौ मरिचादि सितादि मिलि पानक[1] स्वादु विशेषि।
विभावादि थाई मिलें रसै होत त्यों देखि॥
लौकिक तथा अलोकिकै द्वै जानहूँ रस ठौर।
लौकिक लोक प्रसिद्ध त्यौ, कवित नृत्य मे और॥
शृंगारादिक, लोकगत कवित नृत्य मे ल्याइ।
होत अलौकिक है सबै रस आनंद बढ़ाइ॥
सकल लोक रस के सिरै आनँद लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत है पंडित सहृदय दच्छ॥
आनँद वृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि गन सब रस कान्ह सरूप॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव॥

वही, ३।४-६

सोमनाथ

१.

जह विभाव अनुभाव अरु सहित संचारी भाव।
व्यंग्य क्रियो थिर भाव इहि सो रस रूप बताव॥
सुनि कवित्त को चित्त मधि[2] सुधि न रहे कुछ और।
होइ मगन वहि मोद मे सो रस कहि सिरमौर॥

रसपीयूषनिधि, ७।४४-४५

भिखारीदास

१.

जहँ विभाव, अनुभाव थिर चर भावन का ज्ञान।
एक ठौर ही पाइए सो रसरूप प्रमान॥

—रससारांश, ४४८

१. एक प्रकार का पेय पदार्थ। २. मध्य।

२.

लखि विभाव अनुभाव ही, वर थिर भावै नेकु।
रस सामग्री जो रमै, रसै गनै धरि टेकु॥

काव्यनिर्णय, ४।१५

३.

कारन मानि विभाव अरु कारज है अनुभाउ।

× × × ×

सबही को करि एक पनि देत रसै ठहराइ॥

वही, ४।८-१४

४.

जा हिए प्रीत न सोक है, हँसी न उत्साह ठान।
ते बातें सुन क्यों द्रवै, दृढ़ ह्वै रहै पषान॥[1]

वही, ४ ७

रसलीन

१.

जो थायी रस बीज विधि मानस चित छित[2] माँहि।
ताको अंकुर जो कछू सो थाई कहि वाहि॥
अवसर सम उपजावने सरसावत जल रूप।
अलिबन उद्दीपन हियो जन विभाव अनुरूप॥
अनुभावहु तरु प्रगट करि जानि लेहु यह बात।
व्यभिचारी है फूल सों छिन छिन फूलत जात॥
तिनि सँजोग मकरंद[3] लों रस उपजत है आनि।
रसिक मधुप कवि चित्त करि ताहि करै पहिचानि।

रसप्रबोध, ६-१२

२.

रत्यादिक थिरभाव के कारन जान विभाव।
कारज है अनुभाव अरु सहकारी चरभाव॥
प्रगटत विरह विभाव पुनि कछु प्रगटत अनुभाव।

१. पत्थर। २. भूमि। ३. पराग।

अति प्रगटत हैं आइ पुनि तन अनुभव चरभाव[1] ॥
थाई के यों प्रगट तें रस कहियत है सोय।
जिहि स्वादिनि से भूलि सब महागमन[2] मन होय ॥
सो रस चित्र कवित्त में कविजन चित्र समान।
जाहि लखत ही रीझि के मोहत रसिक सुजान ॥
चाही को रस कहत हैं सो कवि ग्रंथनि ल्याइ।
अपने अपने रूप में नवविधि लिखे बनाइ ॥

वही, ३१-३५।

रूपसाहि

१

जहँ विभाव अनुभाव मिलि सातुक[3] अरु विभिचार।
स्थाईन ते पुष्ट जहँ तहँ पूरन रस सार ॥

रूपविलास, ११-१

२.

ब्रह्मानंद अखंड जोहि पहुँ लसत लहि ग्यान।
सांत अलौकिक रस कह्यो जानत साधु सुजान ॥
लोक विषय सुनि निरषि जहि पै अनंद जु होइ।
तीन भाँति को सुकवि कहि लौकिक रस यह सोइ ॥

वही, ११।३-४

शिवनाथ

१.

नवरस को बहु भेद है विविध प्रकार विकार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार ॥

रसवृष्टि, १६।३

२.

सुख समूह दंपति लहै परिपूरण रति भाव।
सो सिंगारु रस वर्णिये सुनत होइ चित भाव ॥

वही, १६।५

१. संचारी भाव । २. मधुमती भूमिका; तन्मयता की अवस्था । ३. सात्विक भाव ।

३.

नवरस वर्णन हौ कियो अपनी बुद्धि विचारि।
भावभेदरसमोद को बुधजन लेहु सुधारि।
वरण्यों नायक नायका अपनी मति अनुमान।
यह ढीठी शिवनाथ की क्षमियो सकल सुजान।
राधा राधारमन के वरणे कछुक विलास।
कियो ग्रंथ रसवृष्टि है कविजन करो प्रकास।।
जो रसवृष्टि पढ़ै गुनै जानै नवरस रीति।
उपजै ज्ञान विवेक रस कृष्ण चरण सों प्रीति।।[1]

वही. १६।५०-५३

जनराज

१.

सुने लषे सुख ऊपजै तासौ दुष मिटि जायं।
पुष्ट विभावादिकन सों तेई रस ठहराय।।

कवितारसविनोद, १०।१

२.

रस को कारन भाव हैं प्रथमहिं बनंत ताहि।
बहुरि विभावादिकन सों कहिहौं भेद सराहि।।
प्रथम जु उपजत चित्त मै रहत सदाई साथ।
तासौ वर्नत भाव हैं सब सुकविन के नाथ।।

वही, १०।२-३

३.

है विभाव अनुभाव पुनि संचारी थिर भाव।
चारि भाव ये नाम हैं पाँचौ स्वातिक गाय।।

वही, १०।२-३

रसिकप्यारे कवि

१.

सह विभाव अनुभाव चर सातुक भाव समोइ।
पूरन थाई भाव जो सो रस कहि कवि लोइ।।

१. रसवृष्टि के प्रणयन का उद्देश्य काव्यात्मक रस का निरूपण नहीं है प्रत्युत पाठकों में ज्ञान, विवेक और श्री कृष्णचरणों में प्रीति का उत्पादन है। अतएव इसे भक्ति-रस-निरूपक ग्रंथ ही मानना चाहिए।

भाव विभाव अनुभाव अरु संचारी पहचानि।
इनकरि मन विरमै जहाँ तहाँ पुनि रस कवि जानि॥
जगी जोति थिर भाव की उदित वासना जोइ।
ता सहँ पुनि रस कहत हैं कवि कोविद सब कोइ॥
सह विभाव अनुभाव अरु सातुक संचारीन।
दई अगाइ[1] जु वासना कहत सकल परबीन॥

रसचंद्रिका, ३।१-४

२.

प्रश्न

जहाँ पूरब अनुभव नहिं तहँ पूरब अनुराग।
सो रस तहँ काहे नहीं लच्छन मिलत सुभाग॥

उत्तर

तहँ पुनि अनुभव जानियै और जन्म कौ जोइ।

वही, ३।५-६

पद्माकर

१.

मिलि विभाव अनुभाव अरु संचारिन के वृंद।
परिपूरन थिर भाव जो सु रसरूप आनंद॥
जो मन पाइ विकार कछु लखि दृढ़ होत अनूप।
तो पूरन थिर भाव को बरनत कवि रसरूप॥

जगद्विनोद, पद ६०८-६

२.

ह्वै सब भावन में सिरै टरत न कोटि उपाव।
ह्वै परिपूरन होत रस तेई थाई भाव॥

वही, पद ५७७

बेनीप्रवीन

१.

जहँ विभाव अनुभाव विभिचारी देत प्रकास।
स्थाई भावहिं मोदमय, सोई रस की रास॥

नवरसतरंग, दोहा ३०

१. जगा दिया, उद्रिक्त।

२.

नवरस में ब्रजराज नित, कहत सुकवि प्राचीन।
सो नवरस सुनि रीझिहै, नवल कृश्न परबीन॥

वही, दोहा १८

३.

स्याम वरण ब्रजराज पति, स्थाई है रतिभाव।
ताहि कहत सिगार हैं, सकल रसन को राव॥

वही, दोहा ४११

करनकवि

१.

भाव विभावनि करि सदा होत जु है परिपुष्ट।
ताही सो रस कहत जे रसविद्यनि[1] संतुष्ट॥

रसकल्लोलपद ३१

२.

भाव विभावनुभाव ए संचारी सुषदाइ।
भरत सूत[2] मत कहत है रस के सकल सहाइ॥
भावादिक ए होत हैं नौहू रस के हेत।
ताही ते परगट इन्है पहिले ही कहि देत॥

वही, पद ६-७

३.

रस अनुकूल विकार को भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सरीर इक द्वै विध होत उदोत॥
थाई और संचारियौ दुविध मानसिक मानि।
कहि विकार सारीर सब सात्विक भाव वखानि॥

वही, पद ८-६

प्रतापसाहि

१.

मिलि विभाव अनुभाव मिलि मिलि संचारी भाव।
व्यंग्य होत थाई तहाँ रस कहि सो कविराव॥

काव्यविलास, ३।२२

१. रसशास्त्र में। २. सूत्र।

२.

चारि पच्छ कहि रसहि के काव्यप्रकाश बखानि।
यक विभाव के ज्ञान तें रसहि जानत जानि॥
यक अनुभित ते जानिये यक भोगहि[1] ते जानि।
येक व्यजना हेत है चारि भाँति के मानि॥

वही, ३।१५-१६

३.

भट्टलोल्लट का मत—

जहाँ परस्पर होत है रसविवाद संबंध।
सो विभाव के ज्ञान ते जानो रस संबंध॥

वही, ३।१७

शंकुक का मत—

विभावादि थाई जहाँ दो धन मिलि जहँ होइ।
अनुमापक मापक कहत रस संबंध सु सोइ॥
जहँ विभाव परमर्ष ते जौ रस कहियत होइ।
सो अनुमित रस जानिये कहत सुकवि सब कोइ॥

वही, ३।१८

भट्टनायक का मत—

विभावादि संयोग ते भोगक भोग बखानि।
जहँ होइ संबंध यह तहँ सरस पहिचानि॥
जहं विभाव भावांत ते साम्य भाव व्यापार।
सो भोगी रस जानिये मम्मट मत निरधार॥

वही, ३।१९

अभिनव गुप्त का मत—

चर्वनाजन्य[2] ते रस जहाँ व्यक्ति होई जेहि ठौर।
कह्यो व्यंजना हेत सो कहत सुकवि सिरमौर॥

वही, ३।२०

१. भोगव्यापार द्वारा आस्वादनीय। २. आस्वादजन्य।

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

लहि विभाव अनुभाव अरु संचारिन के संग।
वर्तमान थिर भाव जो सो रस जान अभंग॥

रसिकविनोद, छंद ३८७

२.

सो थिर भावै रस कहै जब परिपूरन होइ।
कछुक अपूरनता लहै भाव कहावत सोइ॥
अविरोधी सबिरोध सब भावन सहित प्रधान।
मनविकार अंतर अलख[1] सो थिर भाव प्रमान॥

वही, छंद ३६४-३६५

३.

मन विकार जो होत है ताको कहियत भाव।
थिर विभाव, अनुभाव अरु संचारी तहँ नाव॥

वही, छंद २३८।

४.

है व्यापक अरु विमल शुचि सदा रहत सुखरूप।
विद्या ज्ञान सुसंग कर रस प्रम लखत अनूप॥

वही, छंद २२६

ग्वालकवि

१.

जहँ विभाव अनुभाव अरु सात्विक औ संचारि।
ये मिलि थिति कों पूरही सो रस सुकवि उचारि॥
चिदानंद घन ब्रह्म सम रस है श्रुति परमान।
दुविधि सुरस लौकिक जु इक दुतिय अलौकिक जान।
रस जु अलौकिक है त्रिधा स्वाप्निक एक विचार।
मानोरथिक सुजानियै औपनयनिकहि धार॥
औपनयनिक[2] जो रस लिख्यौ सो नौविधि मतिधीर।
कहि शृंगार जु हाँस अरु करुना रौद्र सुवोर॥
फेरि भयानक भाखिकैं वीभत्स जु बरनात।
अद्भुत लों ये आठ रस बरनत नाट्य दिखात॥
सात सु नवमो काव्यकर कहत काव्य के माँहि।

रसरंग, २।१-६

१. अलक्षित। २. औपनयिक।

२.

आलंबन तें जनित जो बीजरूप दरसाय।
अटल अपरिपूरन रहै सो थाई नौ गाय।

३.

सो सिंगर रस के प्रभु हैं श्रीकृष्ण रसाल॥
सो श्रीकृष्ण रसों की कहिये धनमन प्रान।
जिनको लीला गाय के तरत जु सकल जहान॥

वही, १।२-३

× × ×

नौ हू रस के भेद सब बरनत सहित उमंग।
राधाकृष्ण चरित्रमय रसिकन कों रसरंग॥

वही, १।६

रसिकबिहारी (रसिकेश)

१.

कहि विभाव, अनुभाव अरु संचारी मिलि होत।
अस्थाई से प्रगट रस, ताहि कहें कवि गोत॥

काव्यसुधाकर, १०।१

नंदराम

१.

जहँ विभाव अनुभाव अरु संचारिन को भौर।
ह्वै पूरन थिरभाव जुत सुरस रूप तेहि ठौर।
जैसे इच्छ[1] विकार तैं होत सरकरा[2] कद।
तैसो ही थिरभाव ते सुरस रूप आनंद॥

श्रृंगारदर्पण, १०।१-२

लछिराम

१.

थाई अचल विभावै अरु अनुभाव।
थाई थिर परिपूरन तहँ रसराव॥

१. इक्षु, ऊख। २. शर्करा, शक्कर या गुड़।

भावहि ते रस प्रगटहिं मन विकार।
पै विकार सों आनंद रस अवतार॥
तिन रस नाम सराहत प्रथम शृंगार।
हास्य करून गनि रौद्रहि बीर विचार॥
भय वीभत्स जु अद्‌भुत सांत सुबेस।
नवरस नागर बरने सु कवि नरेस॥

महेश्वरविलास, ४।२६१-६४

२.

विहरत सब रस भीतर बर शृंगार।
बरनत प्रथमहि तातें सुमति उदार॥

वही, २।१

*

द्वितीय अध्याय

विभाव [आलंबन और उद्दीपन]

कृपाराम

१

समय अवस्था तें परे स्वाधिनपतिका मानि ।
कृपाराम यों कहत हैं भरत ग्रंथ अनुमानि ।।

हिततरंगिनी, दोहा ४ और ३५

२.

तीन भेद नारीन के लोक लोक में जानि ।
स्वकीया परकीया सुपुनि, बारबधू पहिचानि ।
उत्तम मध्यम अधम तिय[1], प्रकृति भेद तें जानि ।।

वही, दोहा १६, १७

नंददास

१.

जग में जुवती त्रय परकार । करि करता निज रस विस्तार ।
प्रथम स्वकीया पुनि करकीया । इक सामानि[2] बखानी तिया ।।
ते पुनि तीन तीन परकार । मुग्धा, मध्या, प्रौढा विहार ।
मुग्धा हू पुनि द्वै विधि गनी ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी ।।
प्रथमहि मुग्ध नऊढा[3] होय । पुनि विश्रब्ध नऊढा सोय ।

रसमंजरी (नंददास ग्रंथावली), पृ० १४५

२.

तह केई धीरा केइ अधीरा । केइ धीरा धीरा रस भीरा ।
मुग्धा मे धीरादिक लच्छिन प्रगट नही पै लखै विचच्छिन[4] ।।
ज्यों सुंदर तरु अंकुर माँही । दल फल फूल डार सब ताहीं ।
मध्या मे ते प्रगट जनावैं । पल्लव कली फूल होय आवै ।।

वही, पृ० १४७

३.

नाइक बरनें चारि प्रकार । प्रमदा[5] प्रेम बढावनहार ।।
एक धृष्ट, इक सठ, एक दच्छिन । इक अनुकूल सुनहिं अब लच्छिन ।।

वही, पृ० १५६

१. नायिका । २. सामान्या, गणिका । ३. नवोढा, नव विवाहिता । ४. विचक्षण, विद्वान् । ५. नारी ।

रहीम

१.

स्वकीया

रहत नयन के कोरवा, चितवन छाय।
चलत न पग पैजनियाँ, मग ठहराय ।।

बरवै नायिका भेद, ४

परकीया

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन भेद ।
गैल न छाँड़त गोरिया, गनत न खेद ।।

वही, १३

सामान्या

लखि लखि धनिक धनिअवा, बनवति भेख ।
रहि गइ हेरि अरसिआ, फजरा नेख ।।

वही, ३३

उत्तमा

लखि अपराध पियरवा, नहि रिसि कीन्ह ।
बिहँसत चँदन चउकिया, बैठन दीन्ह ।।

वही, ६३

मध्यमा

बिनगुन पिव उर हरवा, उपरेउ हेरि ।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया, रहि चख[1] फेरि ।।

वही, ६४

अधमा

बार बार गुन मनवा, जनि करु नारि ।
मानिक औ गज मोतिया, जो लगि बारि ।।

वही, ६५

केशव

१.

जिनतें जगत अनेक रस, प्रगट होत अनयास ।
तिन सों विभति विभाव करि, बरनत केशवदास ।।

रसिकप्रिया, ६।३

१. चक्षु , आँख ।

२.

सब बिभाव द्वै भाँति के केशवदास बखानि।
आलबन इक दूसरो उद्दीपन मन आनि॥
जिन्हें अतन[1] अवलंबई ते आलंबन जानि।
जिन तें दीपति होति है ते उद्दीप बखानि॥

वही, ६।४-५

३.

दंपति जोबन रूप जाति लच्छन जुत सखि गन।
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अलि उपवन।
जलचर जलजुत अमल कमल कमला कमलाकर।
चातिक मोर सु शब्द तड़ित घन अंबुद[2] अंबर॥
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान[3] मनि।
नव नृत्य भेद बीनादि रव आलंबन 'केसव' बरनि॥

वही, ६।६

४.

अभिमानी त्यागी तरुन कोककलानि प्रवीन।
भव्य छमी सुंदर धनी, सुचिरुचि सदा कुलीन॥
ये गुन केशव जासु में, सोई नायक जानि।

वही, २१-२

५.

जिन ते दीपति होत है ते उद्दीप बखानि।

वही, ६।५

× × ×

अवलोकनि आलाप परिरंभन[4] नखरदान[5]।
चुंबनादि उद्दीप ये मर्दन परस[6] प्रमान॥

वही, ६।७

१. भाव, काम। २. बादल। ३. वस्त्र। ४. आलिंगन। ५. नखक्षत।
६. स्पर्श।

चिंतामणि

१.

थाइ हेतु जग मध्य जो कवित मध्य सु विभाव।
आलंबन उद्दीपनो द्विविध प्रसिद्ध गनाव।।

कलिकुलकल्पतरु, ५।६६

२.

क- सकल धरमजुत नियुत धन विक्रम पूरो होइ।
ताको नायक कहत है कवि पंडित सब कोइ।।

वही, ५।२।१

ख- आलंबन श्रृंगार को तिय नायका बखानि।
कलान प्रबीन विलासिनी सुंदरता की खानि।।

वही, ५।१।६६

उद्दीपन जे भाव ए सुने कहूँ हम नाँहि।
चन्द्रोद्यानादिक कहे समुझे नाके जाहिं।।
आलंबन के गुन सबै आलंबन के बीच।
ते उद्दीपन कोक है कथन लगे यह नीच।।
सौन्दर्यादिक गुन रहित आलंबनै न होइ।
आलंबन गुन रहित जो बरनि सकै नहिं कोइ।
चेष्टा ताकी आपुही बरनैंगे अनुभाव।
अब उद्दीपन कहत है केसो बुद्धि प्रभाव।।
आलंबन की अलंकृत है आलंबन माह।
सो उद्दीपन होत है जो बरनत कवि नाह।।

कविकुलकल्पतरू, ५।४४-४८

तोष

१.

सो विभाव कहि सो उपजति रस की दीप।
तामे द्वै विधि कहत हैं आलंबन उद्दीप।।

सुधानिधि, पद ९

२.

रस सिंगार के भाँति बहु होत बिभाव सहाइ।
ता विन रस ठहरे नहीं विन धीरज धन नाइ।।
रस को अंग न ठहरतो आलंबन बिन नेक[1]।
उद्दीपन ते बढ़त है बरने सुकवि अनेक।।

—वही, ३२७-३२८

१. थोड़ा।

३.

प्रीतम के सुष सों सुष औ दुख सो दुष सो सुकिया[1] जिय जानो।
जो परनायक सो रति मानति ता तिय को परकीय बखानो।
औ धनदायक सो जो रमै, कहि तोष तिन्है गनिका पहिचानो॥
लक्षन जानि यहा क्रम ते पुनि लक्ष्य अनेक प्रकार बखानो।

वही, १६

४.

सुदर सूर सुशील सुलक्षन साधु सखा मन वाचन कायक।
धर्मधुरंधर धीर धराधिप दीन दयाल अधीन सहायक।
जोर जुबा जनवंत जसो कहि तोष जहान मे जाहिर लायक।
सायक आदि चतुर्दश विधानि जानत है तेहि जानिये नायक।

—वही, २३६

५.

क– उद्दीपन में प्रथम ही सखी दूतिका होइ।
जाति जाति की चतुरता बनरत है सब कोइ॥

—सुधानिधि, २३७

ख– सुभ समीर सुरत स्वर सुमन सुफल पिय चित्त।
सुवसन चितवन रसकथा ये उद्दीपन मित्त॥

—वही, २६२

मतिराम

१.

उपजत जाहि बिलोकि के चित्त बीच रस भाव।
ताहि बखानत नायका, जे प्रबीन कविराव॥

रसराज, छंद ५

२.

तरुन, सुघर सुंदर सकल, काम कलानि प्रबीन।
नायक सो 'मतिराम' कहि, कबित गीत रस लीन॥

वही, छंद २३७

३.

क– चंद, कमल, चंदन अगर, ऋतु, बन, बाग-विहार।
उद्दीपन शृंगार के जे उज्वल संभार॥

वही, छंद २८४

ख- सखी दूतिका जानिए उद्दीपन के भेद।
नायक अरु नायका को हरै विरह को खेद॥

वही, २८७

कुलपति

१.

जिनतें जिनको जगत प्रगटत हैं थिर भाव।
तेई नित्य कवित्त में पावहिं नाम विभाव॥

रसरहस्य, ३।११

२.

जे निवास थिरभाव के ते आलंबन जानि।
सुधि जिनके लखे ते उद्दीप बखानि॥
आलंबन रति के कहत नवल नारि अरु कंत।
उद्दीपन बहु भाँति है वन घन, शरद वसंत॥

वही, ३।१४-१५

देव

१.

जे विशेष करि रसनि को, उपजावत हैं भाव।
भरतादिक सतकवि कहै, तिनकों कहत विभाव॥
ते विभाव द्वै भाँति के, कोविद कहत बखानि।
आलंबन कहि देव अरु, उद्दीपन उर आनि॥
रस उपजै आलंबि जिहिं, सो आलंबन होइ।
रसहिं जगावै दीप ज्यों, उद्दीपन कहि सोइ॥

भावविलास, विलास १, पृ० ८

२.

उपजै रस जाते जहाँ, कै जाते अधिकाइ।
सो विभाव, कविराज है, द्वै विधि दियो बताइ॥
आलंबन उद्दीपन जानो, द्वै विधि सुकवि विभाव बखानो।
नायकादि आलंबन होई, उपवन, सुरभि उदीपन सोई॥

शब्दरसायन, प्रकाश, ३, पृ० ३४

३.

क- गीत, नृत्य उपवन गमन, आभूषन बन केलि।
उद्दीपन शृंगार के, विधु वसंत वन वेलि॥

भावविलास, विलास १, पृ० ६

ख– निज निज के संजोग तें, रस जिय उपजतु होइ।
औरो विविध विभाव बहु, बरनें कवि सब कोइ॥

वही, वि० १, पृ० १३

४.

काम अधिकारी जगत लखै न रूप कुरूप।
हाथ लिए डोलत फिरै कामिनी छरी अनूप॥
तातें कामिनि एक ही कहन सुनन को भेद।
राचैं पागै प्रेमरस मेटै मन के खेद॥

रसविलास, ४। १-४

कुमारमणिभट्ट

१.

स्थाइ भाव रामादिगत, सामाजिक जिय जानि।
जे विशेष भावित करें, ते विभाव पहिचानि॥
होत जाहि आलंबि रस, सो आलंब विभाव।
रस उद्दीपन जे करें, ते उद्दीप विभाव॥
तहँ नायक अरु नायिका, रस सिंगार आलंब।
यथाजोग औरे रसहि मनि आलंब कदंब॥

रसिकरसाल, ५।१-३

२.

उद्दीपन सहृदय हिये जिहि थाई रस पूरि।
ते उद्दीपन भाव गनि, सकल रसनि में भूरि॥
ऋतु, सुगंध, भूषन, कुसुम, कवित, नाच, सगीत।
उपवन, उज्जल, बात सब, रस सिंगार के मीत॥
जल, दोला, पांचालिका[1], कंदुक, नेत्र निमील[2]।
द्यूत, केलि, हल्लीस[3] कों गनि उद्दीप सलील॥

वही, ५।२१२-१४।

३.

अँग सोभा भुज दृगचलन, तिय पिय के अनुभाव।
तेई होत परस्परहि, लखि उद्दीपन भाव॥

रसिकरसाल, ५।२१६

१. एक प्रकार का खेल। २. आँख मीचने का खेल, आँख मिचौनी।
३. गुल्ली-डंडा, एक प्रकार का खेल।

सोमनाथ

१.

जिहिं तें उपजनु है जहाँ जिहिं के थाई भाव।
तासों कहत विभाव सब समुझि रसिक कविराज ॥

रसपीयूर्षनिधि, १।१३

२.

प्रगटत थाई भाव हैं जिनके जिन तें मित्र।
ते कवित्त अरु नृत्य मे जानि विभाव विचित्र ॥

शृंगारविलास, १।८

३

थाई भावनि कौ जु बसेरौ। सो विभाव आलंबन हेरौ ॥
चमकि उठौ पुनि जाहि निहारें। सो उद्दीपन कहत पुकारे ॥

वही, १।१०

भिखारीदास

१.

कारन जनि विभाव अरु कारज है अनुभाउ।
विभिचारी तेंतीस ये जहँ तहँ होत सहाइ ॥

काव्यनिर्णय, ४।८-९

२.

जासों रस उत्पन्न है सो विभाव उर आनि।
आलंबन उद्दीपनो सो द्वै विधि पहिंचानि ॥

रससाराश, १०

३.

जिहिं कहियत शृंगाररस ताको जुगल विभाव।
आलंबन इक दूसरो उद्दीपन कविराव ॥
बरनत नायक नायिका आलंबन के काज।
उद्दीपन सखि दूतिका सुख समयो सुख साज ॥

शृंगारनिर्णय, ६-७

४.

जानो नायक नाइका, रस सिंगार विभाव।
चंद सुमन सखि दूतिका, रागादिको बनाव ॥
औरनि के न विभाव मैं, प्रगटि कह्यो इहि काज।
सबके नरे विभाव हैं, औरो है बहु साज ॥

सिंह विभाव भयानकहुँ, रुद्र बीरहू होइ।
ऐसी सामिल[1] रीति में, थै नेम[2] कहै क्यों कोइ॥

काव्यनिर्णय, ३।१०-१२

रसलीन

१.

थाई कारन को सु कवि कहत विभाव विशेष।
सो द्वै विधि आलंबन रु उद्दीपन अविरेष॥
उपजै थाई जाहि लहि सो आलंबन जान।
अधिक जाहि ते होत सो उद्दीपन पहिचान॥

रसप्रबोध, २७-२८

२.

रतिकारन जे कवित्त में सो विभाव है जान।
इक आलंबन दूसरो उद्दीपन पहिचान॥
यातें रति अवलंबई सो आलंबन होय।
रति को दीपति जाहि ते उद्दीपन है सोय॥
सो आलंबन नायिका अरु नायक जिय जान।

वही, ४६-५१

३.

आलंबन में नायिका नायक प्रथम बखान।
सखि दूती रितु आदि अब उद्दीपन में आन॥

वही, ५७७

क. देखतही जिहि नारि को नर हिय उपजै प्रीति।
ताहि कहत है नायिका जो जानत रसरीति॥
सोऊ [illegible] अनूप मनहरनी कमला रूप।
आनी लों अति चतुर तिहि तिय बरनत कबिभूप॥

रसप्रबोध, ५४-५५

ख– उपजै जिहि नर निरखि के नारिन ही प्रति भाव।
ताही को नायक कहैं जे प्रबीन कविराव॥

वही, ४८८

१. संमिलित। २. नियम।

रूपसाहि

१.

कवितगीत रसलीन मन सुंदर तरुन प्रवीन।
मदनभीत सुवचन धनी नायक कहिय कुलीन॥

रूपविलास, ५।१

२.

उपजतु है रतिभाव चित जाके दरसन होत।
ताहि बखानत नायिका रूपसाह कवि गोत॥

वही, ६।१

३.

स्वाधिनपतिका वसि पिया तिहि कहुँ कर्यो विराम।
कहुँ रहि यह चित वही उक्ता वाम ललाम॥
अंतहु करि विश्राम पिय जबहि चित जुत आइ।
उक्ता तें भइ षंडिता[1] देषतहीं दुष छाइ॥
कलह करें पियकों गअें पछितानी जब सोइ।
कलहंतरिता[2] नाइका तबहि वषानी वोइ॥
करि संकेतहि कंत सौं अैहैं आजु विशेषि।
सजत सुरत के साज कौं वासकसज्जा लेषि॥
पिय नहि आयौ दुष भयौ विप्रलब्ध तव सोइ।
कामकलित उतही गरी अभिसारिका सुहोइ॥
निसि विहरत पिय कहि सुहम जात विदेसहि भोर।
सुनें प्रवत्स्यत् प्रेयसी पियराई तन जोर॥
प्रातहि पति परदेस गौ प्रोषितपतिका तीय।
आगच्छत्पतिका भई आवत पथिमधि पीय॥
आये पिय प्यारी धरै आगतपतिका वाम।
रहन लगे तव फिर भई स्वाधिनपतिका नाम॥

रूपविलास, ६।१–८।

जनराज

१.

जेई जिनको जगत में, थिरता उपजावंत।
तिनको कहत विभाव है, कवि रस ग्रंथ अनंत॥

कवितारसविनोद, १०।७

१. खंडिता। २. कलहांतरिता।

२.

सो विभाव सब रसन में, संचरै द्विधै भाँति।
प्रथम कहत आलंबने, उद्दीपन करि काति।
आलंबन ही ते जगै, उद्दीपन सरसात।
ए दोउनोउ रसन, सब कवि बरनत जात॥

वही, १०।८-९

३.

नवल नारि नायक कहत. आलंबन शृंगार।
उद्दीपन घन-वन-सरद चंद कमल विस्तार॥

वही, १०।११

४.

गुन गभीर उदार अति केलिकला रसलीन।
रूप माधुरी कलित मद नायक जानि प्रबीन॥

वही, ११।१२

उजियारे कवि

१.

सह विभाव अनुभाव अरु सातुक संचारीन।
दई जगाइ जु वासना कहत सकल परवीन॥

रसचंद्रिका, ३।४

२.

क- आन भाँति भूषन वसन वेष नाम आचार।
अरु अद्भुत लषि वचन सुनि हास विभावनुदार॥

वही, ६।४

ख- अस्त्र शस्त्र टूटे कटै पूरे लगे प्रहार।
युद्धभूमि की वस्तु लषि होतु रुद्र अवतार॥

वही, ८।४

ग- जंतु भयानक वेष रव युद्ध विजन वनधाम।
पुनि गुरु नृप अपराधमय भय विभाव उदाम॥

वही, १०।३

घ– दरस असंमत - गध - रस अरु सपरस करि जोइ।
और गिनगिनी[1] ठौर बहु रस वीभत्स जु होइ[2] ॥

वही, ११।३

पद्माकर

१.

नवरस में जु सिंगार रस सिरैं कहत सब कोइ।
सु रस नाइका नाइकहि आलंबित ह्वै होइ॥

जगद्विनोद, पद ६ ।

२.

जिनहिं विलोकत हीं तुरत रस उद्दीपित होत।
उद्दीपन सु विभाव है कहत कबिन को गोत॥
सखा सखी दूती विपिन उपबन षटरितु पौन।
उद्दीपनहि विभाव में बरनत कवि मतिमौन॥
चंद चाँदिनी चंदनहु पुहुप पराग समेत।
यों ही और सिंगार रस उद्दीपन के होत॥

वही, ३३५-३७ ।

३.

आलंबन सिंगार के तिय नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखि सखा बन बागादि निहार॥

वही ६१५

४.

क– हास्य

तिहिं कुरूप कूदब कहब कछु विभाव ते मानि।

वही, ६७०

ख– करुण

आलंबन प्रिय को मरन उद्दीपन दाहादि।

वही, ६७५

१. घृणास्पद ।

२. शेष रसों के विभाव का विवरण रसचंद्रिका की ह० लि० प्रति के जीर्ण होने के कारण फटा हुआ है। अतएव वे अंश दुर्लभ हैं।

ग– रौद्र

आलंबन रिपु रन उमड़ उद्दीपन तिहिं ठाम।

वही, ६८०

घ– वीर

जुद्धबीर को जानिये आलंबन रिपु जोर।
उद्दीपन ताको तबहि रिपुसेना को सोर[1] ॥

वही, ६८७

ङ– बीभत्स

पीब मेद मज्जा रुधिर दुरगंधादि बिभाव।

वही, ७१२

च– अद्भुत

असंभावित जेते चरित तिनको लखब विभाव।

वही, ७१७

छ– शांत

सतसंगति गुरुतपोवन मृतक समान बिभाव।

वही, ७२५

५.

सुंदर गुनमंदिर जुवा जुवति विलोकै जाहि।
कविता राग रसज्ञ जो नायक कहिये ताहि ॥

वही, २८१

बेनीप्रवीन

१.

हैं विभाव द्वै भाँति के, आलंबन है एक।
उद्दीपन है दूसरो, कविजन कहत अनेक ॥
आलंबन है नायिका, अरु नायक जो जानु।
जिनमें आलंबित रहत, सो स्थाई परमानु ॥

नवरसतरंग, पद ३२-३३

२.

जेहि तरुनी में होत है, रूप अनुपम सोभ।
ताहि नायिका कहत हैं, लखन लगे हैं लोभ ॥

वही, १

१. कोलाहल।

३.

दानी अभिमानी धनी, मनमोहन रमनीय।
नायक तरुन कुलीन सुचि, छमी काम कमनीय[1] ॥

वही, २०२

४.

जो रस को दीपत्ति करै, ते उद्दीपन जानि।
रितु बन बागादिक सबै, कविजन कहत बखानि ॥

वही, २७७

करन कवि

१.

तह विभाव द्वै भाँति को सुकविनि कह्यो बखानि।
आलंबन है एक पुनि उद्दीपन यक जानि ॥
आलंबन मिलि होत है नवलबधू अरु नाह।
उद्दीपन उद्यान झक ससि चंदन जलवाह[2] ॥
होहिं जाहि आलै रस ते आलंबन जानि।
जे उद्दीपन करत रस ते उद्दीपन मानि ॥

रसकल्लोल, पद ३२ ३४

प्रतापसाहि

१.

जिन ते प्रकटत जगत में रति आदिक थिर भाव।
पावत है सु कवित्त में तेई नाम विभाव ॥

काव्यविलास, ३-२५

२.

जाहि लखे उपजै हिये रति थाई मन माँहि।
ताहि बखानत नायिका कविजन सुमति सराहि ॥

व्यंग्यार्थकौमुदी, १०

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

चारि भाँति को भाव है प्रथम विभाव बखानि।
थाई अरु अनुभाव पुनि सचारी उर आनि ॥

रसिकविनोद, छंद २४२

१. सुंदर। २. मेघ।

२.

जहाँ रहे थिरभाव थिर आलंबन है सोइ।
आश्रै विषै प्रकार द्वै बरनत है सब कोइ॥
आश्रै प्यारी जानिये पीतम विषै विचारि।
औरो रस बरनन विषै बुधबल सो निरधारि॥
आलंबन शृंगार के नवल नारि अरु कंत।
इनही में थिर भाव रति परगट देखि स्वतंत्र॥

वही, २४५-२४७

३.

उपजत है रति देखिकै बर्द्धमान नहिं होइ।
तातें उद्दीपन इन्हें भूलि न मानौ कोइ॥
जो आलंबन में करै बर्द्धमान थिर भाव।
ते उद्दीपन कहत हैं सब सुकविन के राव॥
सखी दूतिका ये उभै दीपन कारन जानि।
नेह भरत उरदीप रति जोति वढ़ावति आनि॥
सखि सरोज दर्शाइ कै रागरागिनी गाइ।
करि ऋतु बरनन देत ये उरगति प्रीति बढ़ाइ॥

वही, २४६, २५५-५७

४.

क – हास्य रस का विभाव

वेष वचन कलपित अविधि ते विभाव जुग पाइ।

र० वि०, ४३६

ख – करुण रस का विभाव

इष्टनाश मृत इष्ट लखि ए विभाव अनुसार।

वही, ४४०

ग – रौद्र रस का विभाव

रिपु अपराधादिक जहाँ लहि विभाव इक ठौर।

वही, ४४४

घ – वीर रस का विभाव

वीर नाद विरदादि धुनि लहि रिपुकटक विभाव।

वही, ४४७

ङ – भयानक रस का विभाव

घोर दरस अपराध निज लखि भूतादि विभाव।

वही, ४५१

च – बीभत्स रस का विभाव

रक्त मांस रनभूमि उरु निंदित बस्तु विभाव।

वही, ४५५

छ – अद्‌भुत रस का विभाव

जहँ विभाव आचर्ज लखि सुनि विसमै[1] अति होइ।

वही, ४५८

ज – शांत रस का विभाव

सज्जन संगति शास्त्रगत ये विभाव जहँ होत।

वही, ४६३

ग्वालकवि

१.

जनक जासु को मन कहै जन्य जु कछू विकार।
ताकौं कहिये भाव है कविन कियो निरधार॥
भाव सु चारि प्रकार है कहियत प्रथम विभाव।
पुनि कहि थाई भाव कौ लिषिहौ फिरि अनुभाव॥

रसरंग, १।६-१०

२.

हेतु रूप औ बुद्धिकर रस को जो सु विभाव।
सौ द्वै विधि इक आलंबन द्वय उद्दीपन गाव॥
स्थाई भावन को जनक सो आलंबन जानि।
थाई को दीपत करे सो उद्दीपन मानि॥

वही, १।१२-१३

३.

रूपवती हूलषि लुभैं अतिप्रवीन गुनखानि।
बहुत जायका[2] दायका वहै नायका जान॥
लक्षन की प्रधान्यता श्री राधा ही माँहि।
गौन पच्छ में जगविषै और नायका आँहि॥

वही, २।१४ और १६

१. विस्मय, अचरज। २. मजा, स्वाद।

४.

चतुर कुलीन गुनी धनी जुत पुरसत्व उदार।
सुभग बीजु छमी बली नायक ताहि उचार॥

रसरंग, ७।१

५.

जाति करे नायक हू यौ जाति केइक।
पांचालवषत दत्त कूचभार कहौ बहुरि भद्र पहचान॥
पद्मिनि आदिक चिह्न सम चिह्न उच्च जिय जान।
और सबै लक्षन वही क्रमते करौं मिलान॥

वही, ७।२-३

६.

चारु चाँदनी चंद्रमा घन विजुरी अरु मेह।
कोयल कोकिल चातकन मोरादिक सुभ गेह॥
चंदनादि सौरभ सकल त्रिविध समीर इकंत।
बागराग नृत चित्त सर षटरितु सुख सरसंत॥
इन्है आदि औरो बहुत सुंदर वस्तु समग्र।
ताते षटरितु कहति हौ आवै सब सुख अग्र॥

वही, ७।६७-६६

रसिकविहारी

१.

द्वैविध कहत विभाव, आलंबन उद्दीपन जु।
जहाँ रहै थिर भाव, है विभाव आलबन सु॥
जाहि देखि अति वेग ही रस उद्दीपन होय।
उद्दीपन सुविभाव है, बरनै कवि सब कोय॥

काव्यसुधाकर, ६।२ और ५

२.

सखा सखी दूती वन आदिक जान।
उद्दीपनहिं विभाव सु, करत बखान॥
उडुगनपति[1] अरु चंद्रिका, चंदन षटरितु जान।
गान तान नट वाद्य बहु, सुमन सुगंध प्रमान॥

१. चंद्रमा।

बहु प्रकार के रसन में, उद्दीपनहुँ अनेक।
शृंगारादिक जानिये, बरने कविन्ह विवेक॥

वही, ६।६–८

नंदराम

१.

जाहि विलोकत होत है मन मो मदन उदोत।
ताहि तरुणि को नायिका कहत कविन के गोत॥

शृंगारदर्पण, १।१६

२.

गुणी धनी मानी तरुण कोटि काम कमनीय[1]।
काम कला कवि कुशल हो सो नायक वरनीय॥

वही, ५।१२

३.

क–शृंगार रस

कहत नायिका नायकहि आलंबन शृंगार।
वन उपवन पुनि सखि सखा उद्दीपन निरधार॥

शृंगारदर्पण, १०।७

ख – हास्य रस

तहाँ कुदावँ कुरूप स्वाँग सब कहत विभावै।

वही, १०।५०, पंक्ति २

ग – करुण रस

आलंबन प्रियमरन दाह उद्दीपन मानो।
है विभाव सब .... ॥

वही, १०।५२, पं० २

घ – रौद्र रस

आलंबन अरि अरि अनीक[2] उद्दीपन ठानत।

वही, १०।५५, पं० २

ङ – वीर रस

आलंबन अनि अनि अलाप उद्दीपन कीज्जे।

वही, १०।५६, प० २

१. सुंदर। २. सैन्य।

च – भयानक रस

कछू भयानक चरित लखब सुविभाव बखाने।

वही, १०।६१, पं० २

छ – बीभत्स रस

यहि विभाव दुरगंध पीब रक्तादि और वश[1]।

वही, १०।६२, पं० २

ज – अद्भुत रस

असंभावित चरितादि लखन सुविभाव गनोई।

वही, १०।६५, पं० २

झ – शात रस

सतसंगति तप सब मसान[2] सुविभाव प्रमानत।

वही, १०।६७, पं० २

४.

आलंबनहि विभाव को कह्यो यथामति गाइ।
उद्दीपन सुविभाव को अब बरनौं चित चाइ॥
जाहि समागम होत है उर में उदित अनंग।
ताको उद्दीपन कहै सतकवि सरस प्रसंग॥
सखा सखी दूती चतुर षटरितु उपवन पौन।
इनहि आदि औरौ बहुत समुझति हैं मतिभौन॥

वही, ७१–३।

लछिराम

१.

जबहि जाहि आलंबि कै मन रस भाव।
उपजै ताहि कहत आलबन विभाव।।
भेद ग्रंथ मत कहि आलंबन सिंगार।
सकल नायका नायक रस व्यवहार॥

महेश्वरविलास, ३।५५–५६

२.

रस उद्दीपन हिअरें जाहि निहारि।
सो विभाव उद्दीपन कहत विचारि॥

१. वसा, मज्जा। २. श्मशान।

बन उपवन रागादिक षटऋतु पौन।
सखा सखी पर दूती सौरभ भीन॥
उड़गन रजनि कलाधर सुर[1] व विहंग।
इत्यादिक उद्दीपन रवनि प्रसंग॥

वही, ३।६८-७२।

३.

आलंबन के भीतर दरसन चारि।
श्रवन स्वप्न चित्र परतछ[2] ग्रंथ निहारि॥

वही, ३।५७

१. स्वर, संगीत। २. प्रत्यक्ष।

तृतीय अध्याय

अनुभाव [सात्विक भाव सहित]

केशव

१.

आलंबन उद्दीप के जे अनुकरण बखान।
ते कहिये अनुभाव सब दंपति प्रीति विधान ॥

रसिकप्रिया, ६।८

२.

स्तंभ स्वेद रोमांच सुरभंग कंप वैवर्न्य।
आँसू प्रलय बखानिये आठो नाम अनन्य ॥

वही, ६।१०

चिंतामणि

१.

इति करज अनुभाव गनि ए कटाक्ष दै आदि।
मधुर अंग ईहो कहै, सहृदय सुखद अनादि ॥
जे पुनि थाई भाव को प्रगट करै अनयास।
ताहि कहत अनुभाव है सब कवि बुद्धि विलास ॥

कविकुलकल्पतरु, ६।१-२

तोष

१.

मुखरुख चखनि सुभाइ लखि प्रगटति ही की बात।
ताहि कहत अनुभाव सब जिनकी मति अवदात[1] ॥

सुधानिधि, छंद १०

२.

अनुभावहि में होत हैं आठ भाँति के भाव।
ताको सात्विक कहत हैं, जे प्रबीन कविराव ॥

१. स्वच्छ, प्रांजल।

स्वेद स्तंभ स्वरभंग रोमाच विवर्नहि जानि।
अश्रु प्रलय पुनि कंप गनि आठौ भाव प्रमान।

वही, छंद ३८८-८९

मतिराम

१.

जिनते चित रतिभाव को आछो अनुभव होय।
रस सिंगार अनुभाव तिहि बरनत कवि सब कोय॥
लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास भाव धृति मोद।
इनते प्रगटत भाव रति बरनहि सुकवि विनोद॥

रसराज, ३०९-३१०

२.

ते अनुभावै जानियो, जे हैं सात्विक भाव।
रसग्रंथनि अवलोकि कै बरनत सब कविराव॥

वही, ३१३

३.

स्तंभ, स्वेद, रोमाच, सुरभंग, कंप वैवर्ण।
आंसू औरो प्रलय कहि, आठौ ग्रंथनि वर्ण॥
जृंभा कौ कवि कहत हैं नवयों सात्विक भाव।
उपजै आलस आदि तें, बरनत सब कविराव॥

वही, ३१४ और ३३६

कुलपति

१.

थिर भावनि को और को प्रगटैं ते अनुभाव।
वचन चितैबो वक्र विधि अरु जे सात्विक भाव॥
आलिंगन चुंबन जिते ते सब हैं अनुभाव॥

रसरहस्य, ३।१२, १६

देव

१

जिनको निरखत परस्पर, रस को अनुभव होइ।
इनहीं को अनुभाव पद, कहत सयाने लोइ॥
आपहि ते उपजाय रस, पहिले होहिं विभाव।
रसहि जगावैं जो बहुरि, तो तेऊ अनुभाव॥

ख – स्तंभादिक जे आठ विध, ते शारीर विचारि।
यद्यपि सात्विक को आंतरभाव है, पै शरीर तें प्रगट होत, यातें शारीर हैं।

वही, ४।२ (व्याख्या सहित)

३

क – शृंगार रसानेभाव

लहि प्रसाद दृग, मधुर वच, धृत प्रमोद, मृदु हास।
अनुभविये शृंगार रस बहुविध अंग विलास॥

वही, ४।११७

ख – हास्यरसानुभाव

विकृत दृष्टि, मुख, गमन लखि विकृत नाम, वच, वेष।
विकृत हँसी लहि, हास्य रस अनुभव रचौ विशेष॥

वही, ४।१२०

ग – करुणरसानुभाव

मोह रुदित, उरघात छितिपात प्रभृति दुख बात।
अनुभविये रस करुन तहँ विधि निंदा उतपात॥

वही, ४।१२२

घ – रौद्ररसानुभाव

भुज हथ्यार आच्छेप लहि, भ्रकुटि कंप रिस[1] भाव।
अधर दंस कर मलन हरु[2] गनत रौद्र अनुभाव॥

वही, ४।१२४

ङ – वीररसानुभाव

लहि सौरज, धीरज, दया, धर, उछाह परभाव।
वैरि निरादर, बिनय, धृति, वीर रसहिं अनुभाव॥

वही, ४।१२६

च – वत्सलरसानुभाव

सिर चुबंन सुत अंग संग दरस परस अभिलाष।
वत्सल में दृग जल प्रभृति अनुभावहिं को भाष॥

वही, ४।१३०

१. क्रोध। २. प्रभृति।

छ – भयानक रसानुभाव

'सिर दृग कर पग कंप लहि तालु कंठ मुख सोख।
'भीति रीति अनुभवत है भय रस में परिपोष॥

वही, ४।१३२

ज – वीभत्सरसानुभाव

मुख दृग नाक सकोरिबौ नैन घूमिबौ लेख।
तुरत गमन तें अनुभवत, रस वीभत्स विशेष

वही, ४।१३४

झ – अद्भुत रसानुभाव

साधुवाद, उल्लास, दृग, लहि, प्रसाद गतिरोध।
तन रुमंच सुरभंग तें कीजे अद्भुत बोध॥

वही, ४।१३६

ञ – शांतरसानुभाव

जग अनित्यता, त्याग, मति, गुरु उपदेश प्रचार।
कहे शांत अनुभाव हैं, वेदांतादि विचार॥

वही, ४।१३८

सोमनाथ

१.

दरसावै परकास रस सो अनुभाव बखानि।

रसपीयूषनिधि, १।१६

२.

भाव सु द्वै विजि उर में आनो। अंतरु अरु सारीरिक मानो।
अंतर के थाई संचारी। और जानि सारीरिक भारी॥

वही, १।६

भिखारीदास

१.

कहूँ क्रिया कहुँ वचन ते, कहूँ चेष्टा देखि।
जी की गति जानी परै, सो अनुभाव विशेखि॥

रससराश, छंद ११

२.

तदपि हाव हेला सफल, अनुभावहि की रीति॥

वही, छंद ३५१

३.

कारन जानि विभाव अरु, कारज है अनुभाव।

काव्यनिर्णय, ४।८

रसलीन

१.

जो थाई को आनि कै प्रगट करै अन्यास।
सोई है अनुभाव यह बरनत बुद्धि निवास॥

रसप्रबोध, २६

२.

रत्यादिक थिरभाव के कारन जान विभाव।
कारज है अनुभाव अरु सहकारी चरभाव॥
प्रगटत विरह विभाव पुनि कछु प्रगटत अनुभाव।
अति प्रगटत हैं आइ पुनि तन अनुभाव चरभाव।

वही, ३१–३२

३.

जो थायी रस बीज विधि मानस चित छित माँहि।
ताको अंकुर जो कछू सो थाई कहि वाहि॥
अवसर सम उपजावने सरसावत जल रूप।
अलिवन उद्दीपन हियो जन विभाव अनुरूप॥
अनुभावहु तरु प्रगट करि जानि लेहु यह बात।
व्यभिचारीं हैं फूल सौ छिन छिन फूलत जात॥

वही, ९–११

४.

कहि विभाव को कहत हौं अब अनुभाव प्रकास।
जो हिय ते रतिभाव अनु[१] प्रगट करै अन्यास॥
कटाक्षादि सों चारि विधि अपने मन पहिचानि।
तिनि कों कवि यह भाँति सो वरनत हैं जिय जानि॥
कायक इक सो जानिये मानस दूजो होइ।
आहारज है तीसरो चौथो सात्विक जोइ॥
कर की गति आदिक सोई कायक मान विसेखि।
मन को मोद प्रगट किये सो मानस अविरेखि॥

१. पश्चात्।

नृत्त समाज बनाव ते कृसन गोपिका ज्ञान।
सो आहारज जानिये बुधजन करत' बखान॥
बहुरो सात्विक है सोई स्वेदादिक ठहिरात।
इन भावन के भेद ये चारि जानि अवदात॥
तन विभचारिन विछति है ये सब सात्विक भाव।
वाई परमट करन हित गने जात अनुभाव॥
नारी औ नर कहत हैं जो अनुभाव उदोत।
ते वै दूजे और कों नित उद्दीपन होत॥

रसप्रबोध, ६७०–६७७

५.

सम सँजोग सिंगार की इहाँ कहीयत हाव।
अनुभव जानि विशेषि अरु ये सामान्य सुभाव॥
जहाँ बचन क्रम चेष्टा बरनत हैं कवि लोइ।
सो अनुभाव रु हाव है तहाँ भेद यै जोइ॥
जो रतिभाव प्रगट करै सो अनुभाव बखान।
रति बढ़ि बहै सिंगार पुन हाव होत है आन॥
बहुत हाव कछु हेत लहि होत नरन मैं आइ।
बरने सहज सुभाव लखि नारिन में ल्याइ॥

वही, ६८२-६८५।

शिवनाथ

१.

कविहि भाव अनुभाव कवि अस्थाई परमान।
व्यभिचारी सात्विक तथा पंच भाव ये जान॥

रसवृष्टि, १३।२

२.

आलंबन अस्थान के उद्दीपन गुण जोइ।
सो अनुभाव बखानिए प्रेम परस्पर होइ॥

वही, १३।७

३.

भाव मध्य सेवन कृपा दया धर्म सु बिनीत।
कर्म क्रिया शुचि दीनता दान ध्यान प्रति प्रीति॥

छल विहीन पोषण भरण धरण धीर शिवनाथ।
परहित सात्विक भाव ये श्रवण सुखद पति गाथ॥

वही, १३।१३-१४

जनराज

१.

थिर भावन कों और कों जे प्रगटावत आनि।
तिनको कवि पंडित कहे, रस अनुभाव बषानि॥
बोलन चलन चितौनि पुनि पुनि इन्हैं आदि हैं और।
आलंगन चुंबन जिते अनुभावन के वीर॥

कवितारसविनोद, १०।१४-१५

२.

अनुभावहि जिहां जिहां अति बढ़े, तिहां स्वाति कहे जाय।
ताके भेद सु आठ हैं, कवि जन गहे गिनाय॥
स्तंभ स्वेद रोमांच पुनि कंप होत सुर भंग।
आंसू प्रलय विवर्न ए आठों स्वातिक अंग॥

वही, १०।१७-१८

उजियारे कवि

१.

क – हास्य रसानुभाव

नायक मुख सकोरिबो दात निकासिबौ कपोल फरकायबो आँखि मिचकाइबो तफारिकै देखिबौ इन आदि और हू है।

रसचंद्रिका, ६।६ (वृत्ति)

ख – रौद्ररसानुभाव

वैरी कै देषिवो ओ ललकारिबो इन आदि के आरै हू है।

वही, ८।४ (वृत्ति)

ग – वीमत्सरसानुभाव

आनन लोचन सकुरिबो ना सामुष ढकि जोइ।
पाइ परत मलिनागलनि[1].... बीमत्स .... सजोइ॥

सब अंग दहिबो अरु थूकिबो इन आदि और हू है।

वही, ११।५ (वृत्ति)

१. ह० लि० प्रति की जीर्णता के कारण इतना अंश पढ़ा नहीं गया।

घ - अद्भुतरसानुभाव

सपरस ग्रहन हुलास पुनि वाह वाहु बहु चाह।
रोम हरष गदगद वचन इनि अद्भुत[१] ... ॥

इकटक देखिवे को आदि के और हू हैं।

वही, १२।११। (वृत्ति)

पद्माकर

१.

जिनहीं ते रति भाव को चित में अनुभव होत।
जे अनुभाव सिंगार के बरनत हैं कवि गोत॥
सात्विक भाव सु हाव धृत आनंद अंग विकास।
इनही ते रतिभाव को परगट होत बिलास॥

जगद्विनोद, ३६२–३६३

२.

अंतरंग अनुभाव में आठहु सात्विक भाव।
जृंभा नवम बखानहीं जे कबीन के राव॥

—वही, ३६७

३.

हास्य रस—मंद, मध्य और उच्च स्वर से हँसना।

करुण रस—रोदन, महीपतन आदि।

रौद्र रस—भृकुटिभंग, चेहरे का आरक्त होना और अधरदंश।

वीर रस—अंगों का फड़कना, आँखों का लाल होना आदि।

भयानक रस—कंप आदि।

बीभत्स रस—नाक मूँदना, तन कंप, रोएँ का खड़ा होना आदि।

अद्भुत रस—बचनों को रचकर बोलना, कांपना और रोमांच।

शांत रस—रोमांच आदि।

वही, ६७१,६७६,६८१,६८८,७१३,७१८ और ७२६ (पूर्वार्द्ध)

२. इस अंश का भी पढ़ना, अशक्य है।

बेनी प्रवीन

१.

विषै वासना ते कछू, उपजै चित्त विकार।
ताही सों सब कहत है, भाव कवित करतार॥
होत भाव अनुभाव है सात्विक आठ प्रकार।
संचारी तैंतीस है, कीन्हों कविन विचार॥
जिन भावन ते जानिये, रस को अनुभव होइ।
कृपा कटाक्षादिक बचन, अनुभावहिं में जोइ॥

नवरसतरंग, २८४–२८६

२.

तन में आपुहि तें प्रगटि मन की आवै बात।
अनुभावहिं के अग हैं, ते सात्विक विख्यात॥
स्तभ स्वेद रोमांच सुर भंग कंप पहिचानि।
विवरन आँसू अरु प्रलै, जृंभा सहित बखानि॥

वही, २८९–२९०

करनकवि

१.

रस अनुकूल विकार कौ भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सरीर इक द्वैविध होत उदोत॥
थाई औ संचारियौ दुबिध मानसिक मानि।
कहि विकार सारीर सब सात्विक भाव बखानि॥

रसकल्लोल, छं० ८–९

२.

क – शृंगार

बंक बिलोकनि, आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, छं० ३७

ख – हास्य

फुल्ल कपोलनि आदि है ते अनुभाव बषानि।

वही, ४८

ग – रौद्र

हाथ मीड़िवे आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, ५७

घ – भयानक

पन्नगबाधा विभौ[1] जहँ कंपादिक अनुभाव।

वही, ६८

ङ – वीभत्स

कहत थूँकिबे आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, ७१

च – अद्भुत

माया जहाँ विभाव है, रोमादिक अनुभाव।

वही, ७४

छ – शांत

सतसगादि विभाव जहँ छमा आदि अनुभाव।

वही, ७६

ज – वीर

सौर्जादिक अनुभाव है धैर्जादिक संचारि।

वही, ९१

३.

कंप स्वेद असुवा प्रलय विवरन अरु सुरभंग।
कथादिक रोमांच ए आठौ सात्त्विक अंग॥

वही, १५०

प्रतापसाहि

१.

जे प्रतीति रस की करत ते अनुभाव प्रमाण।
भुज उछेप कटाछ वच आलिंगन ये जान॥

काव्यविलास, ३.२६

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

उरगत थाई भाव को जातें अनुभव होइ।
ताहि कहत अनुभाव हैं भरत मतो कवि जोइ॥

बैन नैन अरु, अंग सब मनविकार अनुकूल।
ईहा प्रगटत आपनी सो अनुभव को मूल॥

रसिकविनोद, २७२–२७३

ग्वालकवि

१.

मन विकार उपजनि जु है जिहि करि जानि जाइ।
सो अनुभाव उचारहीं ग्रंथन के समुदाय॥
इक इक रस कें होत बहु लिषों रसन के संग।
द्रिष्ट मुष्य अनुभावु है बोधे तुरत प्रसंग॥

रसरंग, १।३५–३६

२.

संचारी सो द्विविध है तनज मनज करि पाठ।
मन सहाय संबंध सों तनभव सात्विक आठ॥

वही, १।३८

३.

पाँचो इद्रिन जोग तें इकइक प्रगटत जाँच।
चक्षु श्रोत्र पुन घ्रान कहि रसना त्विक ये पाँच॥
पाँच पाँच विधि ये प्रगट होत जु सात्विक भाव।
इमि चालिस विधि मै किये नूतन विधि वरनाव॥

वही, १।४१-४१

४.

कहुँ आदि कहुँ अंत मैं नीद अमल के जान।
काम संबंधादिकन तें उपर जत जृंभा मान॥
छिन इक मुख को खुलि रहन मिटैं विकार सुहाय।
ज्रंभा ताकों जानिये वस्तु तें जुहो लिषाय॥

वही, १।६१–६१

रसिकविहारी

१.

तेइ कहावत हैं अनुभाव, वरनत जिनको सात्विक भाव।
स्तभ, स्वेद रोमांचिहि जानो, पुनि स्वरभंग कंप अनुमानो॥
विवरन, आँसू, प्रलय लखाव, ये आठो हैं सात्विक भाव।
अंतरंग अनुभावहि माँह, इने बखानत हैं कवि नाँह॥

काव्यसुधाकर, ७।१–२

२.

जनित स्वभाव सु तियन के, स्वसिंगार के काम।
हाव बखानें ताहि को, सुकवि सबै अभिराम॥
सो अनुभावहि में लखो, लीलादिक दश हाव।
तिने संयोग शिंगार के, बरनत हैं कविसव॥

वही, ७।२१–२२

चंद्रराम

१.

जिनसों दंपति के हिये रति को होत विकाश।
ते अनुभाव सिंगार के पंडित करत प्रकाश॥
स्तंभ कंप स्वरभंग अरु आँसू विवरन जान।
स्वेद पुलकता लीनता सात्विक आठ प्रमान॥
अभ्यांतर अनुभाव में आठौ सात्विक होत।
नौम कहत जृंभा सुकवि जे जग सुमतिनि सोत॥

शृंगारदर्पण, ८।१–३

२.

लीलादिक दस हाव जे अनुभापहि में जानु।
यहाँ प्रगट सिंगार में दंपति अंग बखानु॥

वही ८ १३

लछिराम

१.

अनुभव मन जाही तें रुष रति भाव।
ते सिंगार के अनुभव कह कवि राव॥
आनंद अंग धृति सांतिक भाव स्वभाव।
प्रकट होत रति भाव सुइन विकसाव॥

महेश्वरविलास, ४।३०-३१

२.

स्तंभ स्वेद रोमांचक अरु स्वर भंग।
कंप वैवरण आंसू प्रलय उमंग॥
सात्विक आठो अंतरगत अनुभाव।
जृंभा नवम बखानत सब कविराव॥

वही, ४।३३-३४

चतुर्थ अध्याय

संचारी भाव

केशव

१.

भाव जु सबही रसनि में उपजत केशवराय।
बिना नियम तिन सों कहै व्यभिचारी कविराय॥

रसिकप्रिया, ६।११

चिंतामणि

१.

जे विशेष ते थाइ को अभिमुख रहे बनाइ।
ते संचारि वर्णिये कहत बड़े कविराइ॥
रहत सदा थिरभाव मै प्रकट होत इहि भाँति।
ज्यों कल्लोल[1] समुद्र में यों संचारी जाति॥

कविकुलकल्पतरु, ६।८-६

२.

धनविद्या रूपोद्भव आसव जोवन जात।
उपजत है मद भाव तित करति अलस गत बात॥

वही, ६।५२

३.

प्रानत्याग कहियत मरन सु तौ प्रगट जग माँहि।
संग्रामादिक छाड़ि के और बरनन में नाहि॥
जो वह कबहू बर्नियें तौ ताको उद्दोत।
शृंगारादि प्रबंध में मरन[2] न बरनन जोग॥

वही, ६।४६-५०

तोष

१.

उतकंठा उनमाद उग्रता आलस मति धृति।
नींद मोह मद ग्लानि हर्ष चिंता संका स्मृति॥

१. तरंग। २. मद और मरन के लक्षणों की मौलिकता द्रष्टव्य है।

त्रपा[1] त्रास आवेग स्वप्न श्रम व्याधि चपलता।
ईर्षा तर्क अमर्ष विखाद दीनता पुनि जड़ता॥
निर्वेद अवहित्था गर्व पुनि अपसमार[2] मृतु कठिनतहि।
ये तेतीस चरभाव के नाम सकल कवि देत कहि॥

सुधानिधि, ४७१, पृ० १६०

मतिराम

१.

बरनि नायका नायकनि, रच्यो ग्रंथ अभिराम।
लीला राधारमन की सुंदर जस अभिराम[3]॥

रसराज, ३

कुलपति

१.

संचारी जेहि साथ ह्वै बहुत बढावे दाव।
अरु सब रस में संचरै ... ... ॥

रसरहस्य, ३।१२–१३

२.

चित्त विकलता मोह है, स्मृति सुधि करि होय।
धृति संतोष बखानिये, लाज सकुचिबो सोय॥
जहाँ कछु काम न करि सके, इंद्रिय निद्रा सोय।
अमर्ष सो कहिये जहाँ, क्रोध अधिक थिर सोय[4]॥

वही, ३।२२–२३,२७

देव

१.

भरतादिक सत कवि कहैं विभिचारी तैंतीस।
बरनत छल चौतीस यों, एक कविन के ईस॥

भावविलास, विलास २, पृ० ५

१. लज्जा। २. बेहोशी।

३. मतिराम ने भानुमिश्र की रसमंजरी के अनुकरण पर संचारी भावों का पृथक् उल्लेख नहीं किया है। आचार्यत्व की दृष्टि से यह कमी चिंत्य है।

४. कुलपति के इन संचारी भाव लक्षणों पर साहित्यदर्पण की छाप नितांत स्पष्ट है।

२.

विप्रतिपति विचार अरु संशय अध्यवसाइ।
वितरफ चौबिधि जानिए भूचलनादिक भाइ॥

वही, वि० २, पृ० ५७

कुमारमणिभट्ट

१.

रति प्रभृतिक थाईनि में उपजत मिटत सुभाव।
यातें संचारी कहे निर्वेदादिक भाव॥

रसिकरसाल, ४।२५

२.

विभावादि परिपोष तें थाई कहे प्रधान।
जहँ न तोष तहँ थाइ ये संचारी रस आन॥
ज्यों थाई तिय पुरुष के प्रीतहि रति निरधारि।
यहै पुत्र गुरुदेव नृप सौति प्रीति संचारि॥
ज्येष्ठ प्रभृति में हास त्यों शोक अचेतन माह।
पुत्रादिक पर क्रोध कहि कायर प्रभृति उछाह॥
मृगछौनादिक नेह त्यों वीर प्रभृति भय लेखि।
हिंसक में घिन शम खलनि, ज्ञानी विस्मय पेखि॥

रसिकरसाल, ४।६४–६७

सोमनाथ

१.

कहै तीस अरु तीन ए संचारी समुझाइ।
नवहूँ रस में संचरत ह्वै के संग सहाइ॥

श्रृंगारविलास, १।१६

२.

क - असूया

पर को भलो न लखि सके, सु वह असूया जानि।

वही, १।२२

ख - शंका

वस्तु चाहती हानि भय ताकों संक बताय।

रसपीयूषनिधि, १।२२

ग - चिंता

चिता प्रिय को ध्यान।

वही, १।२४

घ - हर्ष

उर आनंद सुहर्ष है।

वही ।१।२५

ङ - धृति

धृति सतोष अपार[1]।

वही, १२६

भिखारीदास

१.

विना नियम सब रसनि में उपजै थाई ठाउ।
चर विभिचारी कहत हैं अरु संचारी नाउ॥

रससाराश, ४८३

२.

विभिचारी तैंतीस ये, जहँ तहँ होत सहाइ।
क्रम ते रचक अधिक अति प्रगट करै थिर भाइ॥

काव्यनिर्णय, ४ ६

३.

जे न विमुख हैं थाय के अभिमुख रहैं बनाय।
ते व्यभिचारी बरनिये कहत सकल कबिराय॥
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत एहि भाँति।
ज्यो कल्लोल समुद्र में त्यों सचारी जाति॥

काव्यनिर्णय, ४।३६-४०

४.

क – निद्रा

निद्रा को अनुभाव जमुहैबो। आलसादि ते नैन मिलैबो॥

रससाराश, ४८५

१. उक्त सारे लक्षणों पर भानुदत्त की रसतरंगिणी का प्रभाव ही नही लक्षित है प्रत्युत उनका अविकल अनुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है।

ख - ग्लानि

ग्लानि जानि जहँ बल न बसावै। दुरबलता असहन दुख ल्यावै॥

वही, ४८६

ग - श्रम

श्रम उत्पत्ति परिश्रम कीन्हे। थके पसीना प्रगटे चीन्हे॥

वही, ४८७

घ - धृति

धृति संतोष पाइ बिनु पाए। विधि गति समुझि धीर जहि धाए[1]॥

वही, ५००

रसलीन

१.

बरने तनचर[2] भाइ अब बरनो मनचर[3] भाइ।
जे थाइन के होत हैं नित सहचारी आइ॥
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत यह रूप।
जैसे आनि समुद्र ते निकसत लहर अनूप॥
फिरत रहत सब रसन में इनकौ यहै सुभाव।
जा रस मै नीको जु है तैसो तहाँ बनाव॥
पहिलै दै निर्वेद को थाई माहि गनाइ।
पुनि अब राख्यौ आनि यह व्यभिचारिन में ल्याइ॥
तत्व ज्ञान विरहादि ते जहँ जग को अपमान।
और निदरिबो आपनो सो निरबेद प्रमान॥
निज रस पूरन हेतु लौ थाई जानि उदोत।
गये रौद्र रस मै वहै व्यभिचारी पुनि होत॥
त्यौंही चिंता आदि जे धरे दसा दसमाहिं।
गये और ठौरन बहै विभचारी ह्वै जाहिं॥

रसप्रबोध, ७६४–८००

१. दास के ये लक्षण चलती भाषा में होने के साथ ही परंपरागत ग्रंथों से सर्वथा अप्रभावित हैं।

२. शारीरिक। ३. मानसिक।

२.

क - निरवेद

ध्यान सोच आधीनता आँसू स्वास उसास।
उठि चलिबो सरबस तजी ये अनुभाव प्रकास।।

रसप्रबोध, ८०१

ख - ग्लानि

रति गतादि ये निवलता नहि सँभार सो ग्लानि।
छीन वचन कंपादि ते जान लेत है जान।।

वही, ८०४

ग - दीनता

दुखदारद विरहादि ते होत दीनता आनि।
मन सो बच हाहा करत तन मलीनता जानि।

घ - संका

निज ते कछु औगुन भये के पवाव कछु देखि।
उपजै संका जानिये इत उत लखन विसेखि।।

वही, ८१०

ङ - त्रास

त्रास भाव प्रगटै सदा घोर दरस सुधि पाइ।
स्तंभ कंप धकधक हुते तन मै होत जनाइ।।

वही, ८१२

च - आवेग

अरि दरसन उतपात लहि मित्र सत्रु जहँ होइ।
सो आवेग खेलन तपन बिभ्रम भ्रम ते होइ।।

वही, ८१५

शिवनाथ

१.

सब ही रस कौ भाव पुनि प्रगट होत बिन नेम।
तासों व्यभिचारी कहै कवि शिवनाथ सप्रेम।।

रसवृष्टि, १३।१०

१.

जनराज

सब ही रस मै संचरै संचारी तैंतीस।
तिनके लक्षन लक्षि करि वर्नत है कवि ईस॥

कवितारसविनोद, १०।२७

२.

क - निर्वेद

ल० – जगसुष ते जु उदासता उपजावत सो निरवेद।
उदा०–रे मन सुमिरि गोविंद ज्यों, परै न जम की षेद॥

वही, १०।२६

ख - ग्लानि

ल० – बुरी वस्तु कछु देखि सुनि मन में होति गलानि।
उदा०–मंदोदरी पिय लोथ लषि, धिक धिक निज जिय मानि॥

वही, १०।३०

उजियारे कवि[1]

१.

क - चिंता

चिंता कहितु ध्यान सह सुमिरनरूप न होइ।
याते सुमृति जुदी कहत कविकोविद सब कोइ॥

रसचंद्रिका, १५।४४

ख - मोह

मोह कहत अविवेक सह मोहनरूप सु आइ।
करिबो अरु करिबो जहाँ समझि न परे सुभाव॥

वही, १५।४७

ग - व्रीडा

मनभांमती क्रियानि कौ जह सकोच जु होइ।
ता सह व्रीडा कहत है कवि कोविद सब कोइ॥

वही, १५।५६

१. संचारी भाव का कोई सामान्य लक्षण इन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है।

१.

पद्माकर

स्थाई भावन कों जिते अभिमुख रहें सिताब।
जे नव रस में संचरैं ते संचारी भाव॥
स्थाई भावन में रहत या विधि प्रगटि बिलात।
ज्यों तरंग दरियाव में उठि उठि तितहि समात॥
थिर ह्वै थाई भाव तब पूरन परि रस होत।
थिर न रहत रसरूप लौ संचारिन के गोत॥
थाई संचारिन को हैं इतनोई भेद।
अब संचारिन के कहत तैंतिस नामनि बेद॥

जगद्विनोद, ४६६–४७२

बेनीप्रवीन

१.

सकल रसन में होत हैं, ते विभिचारी भाव।
येऊ थाई भाव को, जाहित करत प्रभाव॥
थाई भावहि में बसै, उपजै बारहिं बार॥
ज्यों कल्लोल समुद्र में त्यौ इनको निरधार॥

नवरसतरंग, ३०६–३१०

करन कवि[1]

क - निरवेद

ग्लानि विपति ते ईरषा करे जु जिय को षेद।
जहँ तु निजो निदरिबो[2] ताहि कहत निरवेद॥

रसकल्लोल, ८३

ख - ग्लानि

आधिव्याधि रत्यादिश्रम इनते वल की हानि।
कवि कोविद ए सकल पुनि तासो कहत गिलानि॥

रसकल्लोल, ८४

१. उजियारे कवि जैसी स्थिति करन कवि की भी है।
२. अनादर करना।

ग – असूया

होत असूया और को जहाँ न भलो सोहात।
गरब ईरषा क्रोध पुनि ए सब उपजत गात॥

वही, ८६

घ – आलस

मदनविथादिक रति जगे जहाँ उठो नहि जाइ।
ताही सो सब कहैं आलस पंडित राइ॥

वही, ९५

प्रतापसाहि

१.

सकल रसन में संचरै ते संचारी भाव।
पुष्ट करत रस को सदा कहत सु कवि मन भाव॥

काव्यविलास, ३।२७

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

नवहू रस में संचरै ते संचारी भाइ।
जैसे लहरि समुद्र में देख परे छिप जाइ॥

रसिकविनोद, २९३

ग्वाल कवि

१.

सब रस में विचरयो करैं संचारी सो जान।
विभचारी हू कहत हैं याही को गुनवान॥
संचारी सो द्विविधि हैं तनज मनज करि पाठ।
मन सहाय संबंध सों तनभव[1] सात्विक आठ॥

रसरंग, १।३७–३८

२.

पाँचो इंद्रिन जोग तें इकइक प्रगटत पाँच।
चक्षु श्रोत्र पुन घ्रान कहि रसना त्विक[2] में पाँच॥
पाँच पाँच विधि ये प्रगट होत जु सात्विक भाव।
इमि चालिस विधि मै किये नूतन विधि बरनाव॥

वही, १।४१–४२

रसिकविहारी

१.

संचारी तिहि भाषहिं, कवि मतिधाम।
रहे रसन में मिलिके, जो सब ठाम॥

काव्यसुधाकर, ८।१

१. शारीरिक। २. त्वचा, चमड़ी।

२.

अमरष कहुँ विवाद को भाषैं, उत्सुकता उत्कंठा को।
आकृतिगोपन को अवहित्थ जु, नाम उलटि बरनैया को।।

वही, ८।४

नंदराम

१.

सर्पति सदा सनमुख रहे थाई भावन आनि।
नौहू रस में संचरै संचारी ते जानि।।
याही विधि प्रगटत दुरत थाई भावन माह।
बारि बीचि[1] लौं जानिये बरनत कवि कविनाह।।
रस में थिर थाई रहत संचारी थिर नाँहि।
थाई संचारीन को इतनी भेद सदाहि।।

शृंगारदर्पण, ६।१-४

लछिराम

१.

थाई भावन अभिमुख रहि सद साज।
संचारी सब रस में विहरि विराज।।
गुप्त प्रगट यों थाई भावन बीच।
ज्यों तरग सर उठिकै आवत नीच।।
थाई भाव सुथिर तहँ रस अवतार।
थिर न रहत संचारी रसवत चार।
थाई संचारिन यों भेद सुमानि।
निरवेदादिक बरनत मत अनुमानि।।

महेश्वरविलास, ४।११०-१३

क – ग्लानि

२.

छुधा प्यास के रति श्रम सिथिल सरीर।
गनि गलानि सचारी बुध कवि मीर।।

वही, ४।१२३

ख – असूया

परसुख लखि मन जाके इरषा रोष।
ताहि असूया बरनै कवि निरदोष।।

वही, ४।१३०

ग – मद

जोबन धन अंग आपे और न आप।
विच्छुलित वनमाली कहर कलाप।।

वही, ४।,३२

१. तरंग

पंचम अध्याय

स्थायी भाव

केशव

१.

रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान।
भय निंदा विस्मय सदा, थाई भाव प्रमान।

रसिकप्रिया, ६।६

२.

सब ते होय उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों सम रस कहत, 'केशव' कवि सिरमौर।।

(राधिका जू को समरस यथा—)

देखे नही अरविंदनि त्यों चित चंद की आनंद कंद निकाई।
कामिनि काम कथा करे कान न ताके त्रिधाम की सुंदरताई।।
देखि गई जब तें तुमको तब ते कछु वाहि न देख्यो सुहाई।
छाडेगी देह जु देखें बिना अहो देहु न कान्ह कहूं ह्वै दिखाई।।

रसिकप्रिया, १४।३७–३८

चिंतामणि

१.

मन विकार कहि भाव सों वरन बासना रूप।
विविध ग्रंथ करता कहत ताको रूप अनूप।।
जो नहि जाति विजाति सों होइ तिरसकृत रूप।
जब लग रसु तब लग सुथिर थाई भाव अनूप।।
काव्योचित रामादि सुख-दुःखाद्यनुभव जात।
मन विकार संचारि तजि यह थाई थिर बात।।
पावै ल्यावै आपने रूपहि और अखेद।।
जो विरुद्ध हू भावननि रहि विच्छेदक भेद।।
सो थाई है समुद्र सो जब लगि रस आस्वाद।
तब लगि यह वह रहत है जो थाई अविवाद।।

२.

प्रथमहि रति अरु हास पुनि बहुति सोक गन क्रोध।
पुनि उत्साह जुगुप्स पुनि विस्मय सम भय बोध।।

वही, ५।५६

तोष

१.

प्रेम एक रस में जहाँ प्रगट विकार जु होइ।
ताको थाई भाव कहि बरनत कवि सब कोइ।।

सुधानिधि, छं० ११

२.

प्रीति हासि अरु सोक पुनि क्रोध उछाह बनाव।
भय निंदा विस्मय भगति थाई भाव गनाव।।

वही, ५३७

३.

पिय तिय सिसु सिसु पितु सुतहि सुत पितु जानि विवेक।
यहि विधि प्रीति विचारिये जग में रीति अनेक।।
थाई भाव जहाँ दया होत कौनहू भाइ।
तहाँ कहत वात्सल्य रस करुना रसहि जनाइ।।

वही, ५३८-३९

४.

घिन होत लखि सुनि मलिनता बीभत्स को यह हाल है।

वही, पृ० १५१

मतिराम

१.

जो बरनत तिय पुरुष को कवि कोविद रतिभाव।
तासों रीझत हैं सुकवि, सो सिंगार रसराव।।[1]

रसराज, छं० ३४२

१. मतिराम ने शृंगार के लक्षण में ही उसके स्थायीभाव रति का उल्लेख किया है। स्थायीभाव सामान्य का इन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

कुलपति

१.

हियौ रहै जब लगि रहै सब वृत्तिन को भूप।
निश्चल इच्छा वासना, भाव वासना रूप ॥

रसरहस्य, ३।११ और वृत्ति

२

सब भावनि सरदार[1] है, टारि सकै नहिं कोय।
सो थिर भाव बखानिये, रस स्वरूप जो होय ॥

वही, ३।३२

देव

१.

जो जा रस की उपज में, पहिले अंकुर होइ।
सो ताको थिति भाव है, कहत सुकवि सब कोइ ॥
नव रस के थिति भाव है, तिनको बहु विस्तार।
तिन में रति थिति भाव तें, उपजत रस शृंगार ॥

भावविलास, विलास १, पृ० ५

२.

नेक जु प्रियजन देखि सुनि आनभाव चित होइ।
अति कोविद पति कविन के, सुमति कहत रस सोइ ॥

वही, वि० १, पृ० ६

३.

वस्तु घिनौनी देखि सुनि घिन उपजै जिय माँहि।
घिन बाढै बीभत्स रस, चित की रुचि मिटि जाँहि ॥
निंद्य कर्म करि निंद्य गति, सुनै कि देखै कोय।
तन सकोच मन संभ्रमस, द्विविध जुगुप्सा होय ॥

शब्दरसायन, पृ० ३६

कुमारमणिभट्ट

१.

मालामधि ज्यों सूत्र त्यों, विभावादि में आनि।
आदि, अंत, रस माँह थिर, थाई भाव बखानि ॥

रसिकरसाल, ४।३

१. प्रमुख।

२.

रति, हाँसी अरु शोक, रिस, त्यों उछाह, सुत नेह।
भय, घिन्नि, विस्मय, शम तथा दस थाई धनि एह ॥

वही, ४।४

सोमनाथ

१.

थिर अति थाई भाव बखानो। सब भावनि कों ठाकुर जानो।
नौ विधि ताहि हिये में आनो। सो अब परगट कहत सुमानो ॥

शृंगारविलास, १।३२

२.

नायक सबही भाव को टारे टरे न रूप।
तासों थाई भाव रूप कहि बरनत हैं कवि भूप

रसपीयूषनिधि, ७।३२

३.

क – रति

इष्ट मिलन की चाह जो रति समझो सो मित्त।
दरसन तें कै श्रवन तें कै सुमिरन तें मित्त ॥

वही, १।३४

ख – उत्साह

जुद्ध दान अरु दया दमन हि में होत विकार।
ताहि सो उत्साह कहि बरनत रसिक उदार ॥
धर्मवीर चौथो उर आनौं। .... ।

वही, १।३६

भिखारीदास

१.

तातें थाई भाव को रस को बीज गनाव।

काव्यनिर्णय, ४।८

२.

रति हँसी सोको रिसो उत्साहों भय मित्त।
घिन विस्मय थिर भाव ये आठ बसें सुभ चित्त ॥

वही, ४।१

३.

एक एक प्रति रसन में उपजे हिये विकार।
ताको थाई नाम है, बरनत बुद्धि उदार।।

रससारांश, १२

४.

नाटक में रस आठई, कह्यो भरत रिषिराइ।
अनत नवम किय सात रस, तहँ निरवेदे थाइ।।

काव्यनिर्णय, ४।४०

रसलीन

१.

जब भावन में यह लख्यो थाई है रसमूल।
तब इनको बरनन करयो प्रथमै ह्वै अनुकूल।।
जो रस सन्मुख ह्वै कछू बदले सहज सुभाव।
जिन बदलनि को कहत हैं कविजन थाई भाव।।
जा रस संमुख जो कछू तनक बदल हिय होय।
ता रस को थाई कहै यह बरनत कवि लोय।।

रसप्रबोध, छं० २३-२५

२.

रति हासी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सु आनि।
भय घृणा अचरज समुझि पुनि निरवेदहि जिय जानि।।

वही, २६

शिवनाथ

१.

हास[1] हर्ष अरु शोच पुनि रतिसुख क्रोध उछाह।
अस्थायी तेहि जानिये पिय मिलबे की चाह।।

रसवृष्टि, १३।६

२.

नवरस को बहु भेद हैं बिविध प्रकार विचार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार।।

वही, १६।३

१. शृंगार को रसनायक मानने वाले शिवनाथ ने स्थायी भावों में हास का प्रथम उल्लेख कर असंबद्धता का परिचय दिया है।

जनराज

तौ लौ पूरनता नहीं, तौ लौ थाई मांनि।
पूरनता सों रस वहै, भेद थाइ रस जांनि॥

कवितारसविनोद, १०।६८

२.

भाव सबनि सिरमौर है, सकै न को उद्गारि।
ताको थाई भाव कहि, सो रसरूप निहारि॥
सो थाई रस आठ मै, आठ भाँति को होत।
न्यारे न्यारे नाम अब, तिनके कहत उदोत॥

वही, १०।६२-६३

३.

रति थाई सिंगार मै हसी हास में आनि।
सोक सु करुना मै लहै क्रोध रौद्र में जानि॥
है उत्साह सु वीर मै भय भयानक मांहि।
है निंदा बीभत्स में विस्मय अद्भुत ताहि॥
नृति कवित्त मे अष्ट रस तिन थाइन के भेद।
नई सांत पुनि कवि कहै ता थाई निरवेद॥

वही, १० ६५-६६

४.

समुझाये समुझै नहीं है उचार सु हीन॥
नासा मै राषत नही फंदा तूल को दीन॥

इहाँ निंदा की पूरनता नाहीं, याके नाक मै पीनस को रोग यातें। रूई को फोहा दिया बिना बास आवत है॥ यातें गिलानि थाई जानिये।

वही, १०।७५ और वृत्ति।

उजियारे कवि

१.

जगी जोति थिर भाव की उदित वासना जोइ।
ता सह पुनि रस कहत है कवि कोबिद सब कोइ॥

रसचंद्रिका, ३।३

२.

प्रश्न

वत्सलता अरु चपलता भक्ति कृपनता जानि।
चारि और ये रस इहाँ क्यों न सु कहे बखानि॥

आदरता अभिलाष पुनि श्रद्धा स्पृहा सुजानि।
लषि इनि थाई भाव ये चार भाँति पहिचानि॥

वही, ३।१३ १४

उत्तर

ये संचारी भाव हैं अब सुनि लेउ सरूप।
वत्सला करुना विषै हास चपलता रूप॥
भक्ति सांतमय जानिये पृहा[1] कृपनता एक।
और गैर संबंध तें संचारी सुविवेक॥

वही, ३।१५–१६

३.

चित्तवृत्ति द्वै भाँति है, कहत सुकवि सुविलास।
जानों एक निवृत्ति है, दुई प्रवृत्ति प्रकास॥
ज्यों निवृत्ति में होतु है सांत सुरस ..[2]।
त्यों प्रवृत्ति में होतु है माया रसनि गिनाइ॥

वही, १३।१–२

पद्माकर

१.

रस अनुकूल विकार जो उर उपजत है आय।
थाई भाव बखानहीं तिनहीं को कबिराय।
है सब भावन में सिरै टरत न कोटि उपाव।
ह्वै परिपूरन होत रस तेई थाई भाव॥
रति इक हास जु सोक पुनि बहुरि क्रोध उतसाह।
भय गिलानि आचरज निरबेद कहत कविनाह॥
नवरस के नौऊ इते थाई भाव प्रमान।

जगद्विनोद, ५७६–५७६

१. स्पृहा। २. ह०लि० प्रति में यह अंश फटा है।

२.

जहँ घिनाइ की चीज लखि सुमरि परस मन माह।
उपजत जो कछु घिन वहै ग्लानि कहत कबिनाह॥

वही, १६८

बेनीप्रवीन

१.

विषै वासना ते कछू, उपजै चित्त विकार।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कवित करतार॥

नवरसतरंग, २८४

२.

या रस को थाई जु है, ताही रस में होत।
अचल सदा ह्वै जात रस, थाई भाव उदोत।

वही, ३९२

३.

रति हाँसी अरु शोक, क्रोध उछाह अरु भीति भनि।
ग्लानि आचरज ओक, ये ई स्थाई भाव गनि॥

वही, ३१

इहाँ निंदा की पूरनता नाही।
याके नाक मे पीनस को रोग पातें॥
रूई को फोहा दिया बिना बास आवत है।
यातें गिलानि थाई जानिने।

करन कवि

१.

क – रति

इष्ट वस्तु ईहा जनित मन विकार जहँ होइ।
कहु दरसन सुमिरन श्रवन अपरि पूरि रति सोइ॥

रसकल्लोल, १२

ख – हास

ष्याल वचन अरु वेष कृत मन विकार जहँ होइ।
कहत अपूरन सकल कवि हास कहावत होइ॥

वही, १४

ग – शोक

रति बिन इष्ट वियोग कृत मन विकार जिहि ठौर।
अपरिपूरि विलसत जहाँ सोक कहत सिरमौर॥

वही, १६

प्रतापसाहि

१.

हृदय कंद ते उठत जहँ आनँद अंकुर जोय।
गनि विरुद्ध अविरुद्ध ते थाई कहियत सोय॥

काव्यविलास, ३।२८

२.

विरुद्ध अविरुद्ध कहा, सो कहियत है। वीर रौद्रादि में विरुद्ध ते शृंगार, हरस्वादि में अबिरुद्ध तें सो थाई नौ प्रकार॥

वही, ३।२८ (वृत्ति)

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

अविरोधी सविरोध सब भावन सहित प्रधान।
मन विकार अंतर अलख सो थिर भाव प्रमान॥
सो थिर भावै रस कहैं जब परिपूरन होइ।
कछुक अपूरनता लहैं भाव कहावत सोइ॥
नव विधि सों थिर भाव हैं रति हाँसी अरु शोक।
क्रोध उछाह सु भै घ्रिना विसमै[1] बर्नन लोक॥

१. विस्मय, आश्चर्य।

नवमो थाई सम कहै सुकवि काव्य की रीति।
बसु रस नाटक में कहे कर मुनि मति परतीति।।

रसिकविनोद, ३६४–३६७

ग्वाल कवि

१.

आलंबन तें जनित जो बीज रूप दरसाय।
अटल अपरिपूरन रहै सो थाई नौ गाय।।

रसरंग, ११५

२.

रति हाँसी अरु सोक क्रोध उछाह रु भय बहुरि।
ग्लानि जु विस्मय ओक नवम कहत निरवेद को।।

वही, ११६

रसिकविहारी

१.

संचारी तिहि भाषहि, कवि मतिधाम।
रहै रसन में मिलिकै, जो सब ठाम।।

काव्यसुधाकर, ८।१

२.

क – निर्वेद

कछु विचार ते आवही उर में अपने खेद।
बुध जन ताहि बखानहीं संचारी निरवेद।

वही, ८।५

ख – अमरष

अहंकार जब आनको, आप कीजिये दूरि।
अमरष संचारी कहैं, ताहि सुकवि मतिभूरि।।

वही, ८।१७

ग – असूया

लखि न सकै सुख पार को, जो हिय माहि।
कहत असूया नाम सु, कविजन ताहि।।

वही, ८।२३

घ – अपस्मार

जहाँ सुदुःखादिक ते, मुरछा होय ।
अपस्मार तिहि भाषै, कवि सब कोय ।।

वही, ८।५२

नंदराम

१.

जैसे इच्छु[1] विकार तें होत सरकरा[2] कंद ।
तैसो ही थिर भाव तें सुरस रूप आनंद ।।

शृंगारदर्पण, १०।२

१.

प्रगट होत हिय बीच जो रस अनुकूल विकार ।
तेई भाव है कहत सुमति आगार ।।
इनहि विगत नहिं होत है रस परिपूरन जान ।
अचल रहत निज निज रसन तिनको नाम बखान ।।
प्रथम सुरति पुनि हास त्यों शोक क्रोध पहिचान ।
तथा हरष भय ग्लानि कहि अरु आचर्ज बखान ।।
ये ई आठ प्रमान हैं थाई नाटक साज ।
कहि निर्वेद समेत नव काव्यरीति कविराज ।।

शृंगारदर्पण, ६।१-४

लछिराम

१.

रस अनुकूल विकार जू ऊपजै हीअ ।
थाई ताहि बखानत जे रस-जीअ ।।

महेश्वरविलास, ४।२२७

२.

रति सहास गनि सोकहि क्रोधुतसाह[1] ।
भय गलानि अचरज्ज निरवेद सुचाह ।।

१. इक्षु, ऊख । २. खाँड़ या गुड़ ।

नव थाई नव रस के बरनि प्रवीन।
प्रथक रीति सों बरनों मत प्राचीन॥

वही, ४।२२६

३.

क – रति

पतिसंगम की मानस प्रीति नवीन।
रति संचारी या विधि मत प्राचीन॥

वही, ४।२३१

ख – हास

नवला विहसन लागी सहज सिंगार।
चहत बिलोकन पियमुख आज सवार।

वही, ४।२३३

ग – शोक

परम मित्र को संकट परषत नैन।
दुखद सिंधु अस्थाई सोक सबेन॥[2]

वही, ४।२३७

*

१. क्रोध और उत्साह।
२. उपर्युक्त कतिपय स्थायीभावों के लक्षणों से स्पष्ट है कि लछिराम इनके स्वरूप को ठीक से व्यक्त नहीं कर सके हैं।

षष्ठ अध्याय

रस भेद

केशव

१.

प्रथम सिंगार सुहास्य रस करुना रुद्र सु बीर।
भय बीमत्स बखानियें अद्‍भुत सांत सुधीर॥
नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको 'केशवदास' हरि, नायक हैं शृंगार॥

रशिकप्रिया, १।१५–१६

२.

सुभ संयोग वियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति॥

वही, १।१८

३.

क – सो प्रच्छन्न संजोग अरु कहैं वियोग प्रमान।
जानैं पीउ पिया कि सखि होइ लु तिनहिं समान॥

वही, १।१६

ख – सो प्रकास संजोग अरु कहैं प्रकास बियोग।
अपने अपने चित्त में, जानैं सिगरे लोग॥

वही, १।२१

४.

विप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास।
प्रथम पूर्व अनुराग पुनि, करुना मान प्रबास॥

वही, ८।२

५.

छूटि जात केशव जहाँ सुख के सबै उपाय।
करुना रस उपजत तहाँ, आपुन तें अकुलाय॥

वही, ११।१

६.

बरनत बाढ़े ग्रंथ बहु, कहे न केशवदास।
औरो रस यों जानियो सबै प्रछन्न प्रकास॥

वही, १४-४

चिंतामणि

१.

जामै थाई रति सुनौ मन की लगन अनूप।
चिंतामनि कवि कहत है सो शृंगार सरूप॥
सुनौ एक संजोग है विप्रलंभ कहि और।
द्विविध होत शृंगार यों बरनत कवि सिरमौर॥

कविकुलकल्पतरु, ८।१-२

२.

क – जहाँ दंपती प्रीति सों विलसत रचत बिहार।
चिंतामनि कबि कहत हैं यों संयोग सिंगार॥

वही ८।३

ख – जहाँ मिलै नहिं नारि अरु पुरुष सुबरन वियोग।
विप्रलंभ यह नाम कहि बरनत सब कवि लोग॥

वही, ८।६

३.

सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास बखानि।
पुनि कहिए करुनात्मक सु जन लेहु मन आनि॥

वही, ८।११

४.

क – देवपुत्र गुरु आदि जे तिनमै जो रति भाव।
कै संचारी व्यक्ति सो शुद्ध भाव समुझाव॥

वही, ८।१५८

ख – अनुचित विषयक रति जु है सोई तरस अभास।
अनुचित विषयक भाव जो सो पुनि भावा मास॥

वही, ८।१६२

ग – उपसमया वै भाव जो भाव संत सो जानि।
भाव उदै आदिक सुनौ उदयादिक पहिचानि॥

वही, ८।१६५

तोष

१.

प्रथम सिंगार सुहास कहि करुन रौद्र अरु वीर।
भय बीभत्स अद्भुत बरनि सांत सुनो मतिधीर॥

सुधानिधि, ८

२.

थाई भाव जहाँ दया होत कौन हू भाइ।
तहाँ कहत वात्सल्य रस करुना रसहि जनाइ॥
गुरू विप्र की सुरन की भक्ति दया अधिकार।
धर्मकथा हरि को भजन रस सांतहि को चार॥

वही, ५३८-३९

३.

गुप्त प्रगट तै जानिये सबै प्रछन्न प्रकास।
भूत भविष्य व्रतमान[1] को सब भेदनि मैं बास॥

वही, ५४०

४.

उत्साह वर्धन रोम रोमनि चाहि विधि को बीर है।
रन दान दाया सत्य चारि प्रकार बरनत धीर है॥

वही, ४४३

मतिराम

१.

जो बरनत तिय पुरुष को कवि कोविद रतिभाव।
तासों रीझत हैं सुकवि, सो सिंगार रसराव॥

रसराज, ३४२

२.

कहि पूरब अनुराग अरु मान प्रवास विचारि।
रस सिंगार वियोग के तीन भेद निरधारि॥

वही, ३८१

१. वर्तमान।

३.

जो प्रथमहि देखें सुने बढ़े प्रेम की लाग।
बिन मिलाप जो विकलता, सो पूरब अनुराग॥

वही, ३८२

४.

होत वियोग शृंगार में प्रकटदशा नव जानि।
प्रथम कहे अभिलाष पुनि चिंता स्मृति बरबानि॥
गुनवर्धन उद्वेग पुनि कहि प्रलाप उन्माद।
व्याधि बहुरि जड़ता कहत कवि कोविद अविवाद॥

रसराज, ३६८-३६९

कुलपति

१.

अब वियोग कहि पाँच विधि तहँ पूरब अनुराग।
विरह ईर्ष्या शाप पुनि, गमन विदेश विभाव॥

रसरहस्य, ३।४३

२.

समता की सुधि है जहाँ, सु है युद्ध उत्साह।
जहाँ भूलै सुधि सम असम, सो हैं क्रोध प्रवाह॥

वही, ३।७३

३.

संचारी यह व्यंग पुनि, देव राजरति होय।
तहाँ प्रधानता करि कहत, भाव ध्वनि है सोय॥

वही, ३।९४

देव

१.

लौकिक और अलौकिक हि द्वै विधि कहत बखानि॥
नयनादिक इंद्रियनु के, जोगहि लौकिक जानु।
आतम मान संयोग तें, होय अलौकिक ज्ञानु॥
कहत अलौकिक तीन विधि, प्रथम स्वापनिक मानु।
मनोरथ कवि देव अरु, औपनायक बखानु॥

भावविलास, वि० ३, पृ० ६५

ग – प्रवास

प्रीतम काहू काज दै, अवधि गयो परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन कौं, कष्टक हैं बिबुधेश॥

वही, वि० ३, पृ० ८६

घ – करुणात्मक वियोग

दंपतीन मै एक के, विषम मूरछा होइ।
जहँ अति आकुल दूसरौ, करुनातम कहि सोइ॥

वही, वि० ३, पृ० ६२

कुमारमणि भट्ट

१.

गनि सिंगार रस हास रस, करुन रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, बीभत्स त्यों, अद्भुत, शात सुधीर॥

रसिकरसाल, ३।११

२.

लौकिक तथा अलोकिकै, द्वै जानहुँ रस ठौर।
लौकिक लोक प्रसिद्ध त्यौ, कवित नृत्य में और॥

वही, ३।५

३.

कृष्ण देव रँग श्याम त्यौं रति थाई शृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि॥

वही, ३।१२

सोमनाथ

१.

विप्रलंभ को भेद पुनि सुनि पूरब अनुराग।
है ताहि में दस दसा बरनत सुकवि सुभाव॥

रसपीयूषनिधि, १५।४

२.

नवरस को पति सरस अति रससिंगार पहिचानि।

वही, ८।१

३.

क – सब तें मन अति सिमिट के बसे ईश में जाय।
जग बहु भाँतिन बिदरिबौ, सो निरवेद बताय॥

वही, ७।७३

× × ×

प्रगट होय निरवेद जहां ब्रह्म ज्ञान में आय।
सुन कवित्त तासों कहैं, सांत सु रस सुख पाय॥

वही, १६।२०

ख – सांत रस नहिं होतु है, नाटक में सुनिमित्र।
बरनत है कविता विषै, पंडित सुकवि विचित्र॥

शृंगारविलास, २।३६

भिखारीदास

१.

नाटक में रस आठ ही बढ्यो भरत ऋषिराइ।
अनत नवम किय सांत रस, तहँ निर्वेदे थाइ॥

काव्यनिर्णय, ७।४०

२.

शुभ संयोग वियोग मिलि, हे शृंगार द्वै भाइ।
काहू सम मिश्रित मिलै, दीन्हों चारि गनाइ॥

रससारांश, २८३

३.

संयोग ही वियोग है, वियोग ही संयोग।
करि मिश्रित शृंगार को, बरनत हे सब लोग॥

वही, ४१६

४.

मरन विरह है मुख्य पै, करुन करु न इहि भाइ।
मरिनो इच्छनि ग्लानि ते, होत निरास बनाइ॥

वही, ३।१२

५.

भाव उदै, संध्यो, सबल, सांतिहु, भावाभास।
रसाभास ये मुख्य हैं, होत रसहि लो दास॥

काव्यनिर्णय, ४।४४

रसलीन

१.

पितु सुत बालक बालकहि बंधु बंधु सो नेह।
थाई भाव जहाँ दया वात्सल्य रस येह॥

रसप्रबोध, १०६६

२.

सो रस उपजत तीन विधि कविजन करत बखान।
कहुँ दरसन कहुँ श्रवन कहुँ सुमिरन तें परमान॥

वही, ३८

३.

प्रथम सिंगार सु हास रस करुना रौद्रहि जान।
वीर रु भय बीभत्स कहि अद्भुत सांत बखान॥
काव्यमते ये रस नवो बरनत सुमति विसेषि।
नाटक सतरस आठ है बिना सांत अविरेष॥

वही, ३६–३७

४.

क – पूर्वानुराग

जो पहिले सुनिकै निरष बढ़ै प्रेम की लाग॥
बिनु मिलाप जो विकलता सो पूरबानुराग।

वही, ६२१

ख – प्रवास विरह

त्रितिय वियोग प्रवास जो पिय प्यारी है देस।
जामे नेक सुहात नहि उद्दीपन को लेस॥

वही, ६४५

ग – करुना विरह

सिव जार्यो जब काम तब रति किय अधिक विलाप।
जिहि विलाप महँ तिहि सुनी यह धुनि नभ ते आय॥
द्वापर मै जब होइगो आनि कृष्ण अवतार।
तिनके सुत को रूप धरि मिलि है तव भरतार॥
यह सुनि कै जो विरह दुख रति को भयो प्रकाश।
सोई करुना विरह सब बरनत बुद्धि निवास॥
पुनि याहू करुना विरह बरनत कवि समुदाइ।
सुख उपाय ना रहै जिय निकसन को अकुलाइ॥

जासो पति सब जगत सो पति सो मिलत न आइ ॥
रे जिय जीबो विपत को क्यौं यह तोहि सुहाइ।
सुख ले संग जिहि जियत ज्यौ पिया न रच्छक काज।
सोऊ अब दुख पाइ के चलो चहत है आज ॥

वही, ६४८-६५३

५.

सबे प्रच्छन्न प्रकास है वहै प्रगट उद्दोत।
भूत भविष्य वर्तमान पुनि भयो होइगो होत ॥
सब विशेष सामान्य है लक्षन सकल विशेषि।
होइ कछू कुल लछन ते सो सामान्य विरेषि ॥
जो रस उपजै आप सों सुनि सत जिय जांहि।
होइ और जे हेत तें सो परनिसत[1] बखानि ॥
है लक्षन जहँ पाइये तिनि में अधिक जु होइ।
ताही को यह कहत हैं यह बरनत कवि लोइ ॥

वही, १०६१-१०६४

६.

एक ओर की प्रीति अरु तिय आगे नर प्रीति।
अधम पूज्य सो प्रीति अरु चोरी सों रस रीति ॥
हांसी गुरु जन सिरी अरु उत्ताम वधु उत्साह।
चोप बधनि मे सोक पै रसाभास सब चाह ॥

वही, १०६५-६६

७.

भाव न पूरन है जहाँ भावाभास है सोइ।
कृष्ण छाड़ि के प्रीत ज्यों और देस सो होइ ॥
जैसे नायक नायिका इनहूँ के आभास।
जेहि इनकी सी रीति तें औरो कहैं प्रकास ॥

वही, १०९७-९८

रूपसाहि

१.

ब्रह्मानंद अखंड जोहि पहुँ लसत लहि ग्यान।
सांत अलौकिक रस कह्यो जानत साधु सुजान ॥

१. परिनिष्ठित।

लोक विषय सुनि निरषि जहि पै आनंद जु होइ।
तीन भाँति को सुकवि कहि लौकिक रस यह सोइ ॥
स्वाप्निक मानोरथिक पुनि औपनायक कहि मानि ॥
स्वप्न मनोरथ जनित कहि नट नाटक उर आनि ॥

रूपविलास, ११।३–५

२.

कह्यो औपनाइक कविनि आठ भाँति चित देहु।
न्यारे न्यारे भेद अब नवम सहित सुनि लेहु ॥
प्रथम सिगार सुहास रस करुन रुद्र अरु वीर।
भय बीभत्स बखानियें अद्भुत सांत गहीर ॥

वही, ११।८–९

३.

विप्रलंभ सु आठ विधि कह्यो देसंतर प्रिय गौन।
गुरु शासन, अभिलाष तें श्राप ईरषा हौन ॥
देव योग तें, समय तें उतपातहु तें मानि।
इनतें होतु वियोग रस, वरनत कवि मृदु मानि ॥

वही, ११।३२–३३

शिवनाथ

१.

नवरस को बहुभेद है विविध प्रकार विचार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार ॥

रसवृष्टि, १६।३

२.

सुख समूह दंपति लहै परिपूरन रति भाव।
सो सिंगार रस वर्णिये सुनत होइ चित भाव ॥

वही, १६।५

३.

दोऊ चाह भरे रहैं विप्रलंभ शृंगार।
के समीप डर लाज ते के विदेश पिय प्यार ॥
विप्रलभ द्वै विध कह्यो दश प्रकार को भेद।
दशो अवस्था देत है तन मन यौवन खेद ॥

वही, १२।१–२

४.

एक कहत अनुकूल है, कहत एक प्रतिकूल।
होत दुसंधी रस तहाँ, सकल रसन को मूल॥

वही, १६।३८

जनराज

१.

इक पूरव अनुराग पुनि दूजो करुन प्रकास।
तीजो मान बखानिये, चौथो कहत प्रवास॥

कवितारसविनोद, २०।२

२.

साहे चारि प्रकार सु कर्म। जुधहि दान दया श्रो धर्म।
नृत्त कवित्त में जानो सोई। तिनके भेद सुनो कवि लोई॥

वही, २१।२८

३.

वीर हैं सुधि सम असम, भूले रौद्र बखानि।
यहं युद्धवीर अरु रौद्र को, भेद लेह कवि जानि॥

वही, २१।३१

उजियारे कवि

१.

ऐसें अब सुनौं सो रस दो विधि होइ।
इह लौकिक दूजो बहुरि कहत अलौकिक जानि॥
लौकिक संसारीक सु रस ज्ञान अलौकिक मानि।

रसचंद्रिका, ३ ६,७

२.

गुरुनिदेश अभिलाष पुनि मान सराप प्रवास।
समय देव सतु इनिको आदिके औरहू हे॥

वही, ५।४ और वृत्ति

३.

युद्ध दान अरु दया करि बीर तीन विधि जानि।

वही, ६।२

४.

वत्सलता अरु चपलता भक्ति कृपनता जानि।
चारि और ये रस इहाँ क्यों न सु कहे वषानि॥
आदरता अभिलाष पुनि श्रद्धा स्पृहा सु जानि।
लषि इनि थाई भाव ये चारि भाँति पहचानि॥

वही, ३।१३, १४

पद्माकर

१.

क – सो रस है नव भाँति को प्रथम कहत सिंगार।
हास्य करुन पुनि रौद्र गनि बीर सुच्यार प्रकार॥
बहुरि भयानक जानिये पुनि बीभत्स बखानि।
अद्भुत अष्टम नवम पुनि सांत सु रस उर आनि॥

जगद्विनोद, ६१०–६११

ख – नवरस में जु सिंगार रस सिरें कहत सब कोइ।

२.

त्रिबिध वियोग सिंगार यह कहि पूरब अनुराग।
बरनत मान प्रबास पुनि निरखि नेह की लाग॥

जगद्विनोद, ६२६

३.

जुद्धवीर इक नाम है दयावीर बिय नाम।
दानवीर तीजौ सु पुनि धर्मवीर अभिराम॥

वही, ६८६

बेनी प्रवीन

१.

क – प्रथम सिंगार सुहास, करुन रौद्र अरु वीर रस।
भय वीभत्स प्रकास, अद्भुत सात[1] गनाइए॥
नवरस में व्रजराज नित, कहत सुकवि प्राचीन।
सो नवरस सुनि रीझिहैं, नवल कृस्न परवीन॥

नवरसतरंग, २८–२६

१. यहाँ 'सांत' (शांत) पाठ रहा होगा। लिपिक ने गलती से 'सात' लिख दिया होगा।

ख – स्याम वरण व्रजराज पति, स्थाई है रति भाव।
ताहि कहत सिगार है, सकल रसन को राव ।।

वही, ४११

२.

तेहि वियोग शृंगारहि, त्रिविध त्रिसूल।
कहत सुकवि जिन जानी, कविता मूल ॥
यक पूरव अनुराग रु, दूजो मान।
फिर प्रवास कहि तीजो, करत बखान ।।
चौथो करुणा रस कह्यो, आस रहित सो होय।
सो कारन मन समुझिके, नहि बरनत कवि कोय ।।

वही, ४४२-४४

३.

धरम, दया, रन, दान में, आनँद थाई संग।
उमड़ि चले सो वीर रस, कनक बरन वर रंग ।।

वही, ५११

करन कवि

१.

विप्रलंभ सिगार को कहत जु पाँच प्रकार।
विरह ईरषा स्राप पुनि भाविक विरह विचार ।।
बहुरि पुर्व अनुराग है पाँचो विधि ए जानि।
प्रथक प्रथक ए सबनि को क्रमते कहें बखानि ।।

रसकल्लोल, ४०-४१

२.

जहँ आसा है मिलन की रति थाई तहँ होइ।
जहँ आसा नहि मिलन की कहत सोक सब कोइ ।।

वही, ५५

३.

कहत वीर ताको सु कवि सो पुनि चारि प्रकार।
जुद्ध दया अरु धर्म पुनि दान सुबुद्धि उदार ।।

वही, ६२

४.

माया अरु वात्सल्य ए लो भक्ति रस और।
अद्भुत करुना शांति में हास्य मिलत सिरमौर॥

रसकल्लोल, ८०

प्रतापसाहि

१.

द्वै विधि कहत संजोग पुनि पाँच प्रकार वियोग।
पृथक् पृथक् इन सबन के भेद कहत कवि लोग॥
पूर्वराग पुनि मान कहि, बहुरि प्रवास बखानि।
उत्कंठा पुनि श्राप कहि, पाँच भाँति पहिचानि॥

काव्यविलास, ३।५१

२.

पूर्वराग भेद

सो तीन भाँति नीलरंग, कुसुमरंग, मजीठरंग ते तीनहु दर्शन में जानिये। चित्र दर्शन में नीलो रंग अरु स्वप्न दर्शन में कुसुम रंग अरु साक्षात् दर्शन में मजीठ रंग।

वही, ३।५२ (वृत्ति)

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

क – दरस, परस, सुख, परस्पर जब दंपति को होइ।
काम, चातुरी, कोकविधि सुचि सँजोग है सोइ॥

रसिकविनोद, ३१६

ख – मिलिबो होइ न प्रीतिबस जुगुल इष्ट अकुलाइ।
सो वियोग सिंगार करि बरनत हैं कविराइ॥

वही, ४२२

२.

पंच हेत सो होत है सो वियोग पहिचानि।
है पूरब अनुराग पुनि है प्रवास यह जानि॥
कहत ईरषा विरह पुनि श्राप पाँचवो होइ।
विप्रलंभ शृंगार के भेद पंच ये जोइ॥

वही, ४२३–२४

ग्वाल कवि

१.

दैवयोग ते होय जो अनायास सु वियोग।
ताके बहुत प्रकार हैं करियत नाम प्रयोग॥
श्राप मेह-पावक पवन्नपरबंधन गद जोग।
सिंहादिक भय दास वद पिया विरक्त प्रयोग॥
उत्सव भय दुहूँ भीड ते इत्यादिक बहु होत।
लखियो द्वै इक लक्ष ते सब के लक्ष उदोत॥

वही, ६।५३–५५

२.

हास्य आदि बसु रसन में षट स्वनिष्ठ पर निष्ठ।
रौद्र वीर रस ये दुहूँ है केवल पर निष्ठ॥

रसरग, ८।१

३.

चिदानंद घन ब्रह्म सम रस है श्रुति परमान।
दुविधि सुरस लौकिक जु इक दुतिय अलौकिक जान॥
रस जु अलौकिक है त्रिधा स्वाप्निक एक विचार।
मानोरथिक सुजानिये औपनयनिकहि धार॥
औपनयनिक जो रस लिख्यौ सो नौविधि मतिधीर।
कहि शृंगार जु हाँस अरु करुना रौद्र सुवीर॥
फेरि भयानक भाखिकैं बीभत्स जु वरनात।
अद्भुत लौं ये आठ रस वरनत नाट्य दिखात॥
शांत सु नवमो काव्यकर कहत काव्य के माँहि।
इनमें ते शृंगार रस कहत प्रथम चित चाँहि॥

वही, २।२–६

४.

वीर चार जुध दान पुनि दया धर्म मे होय।
थिति उत्साह जु गौर रंग इंद्र देवता जोय॥
संचारी चारो नमै मति आवेग रु गर्व।
पुलक उग्रता धीरता हरषादिक हैं सर्व॥

वही, ८।१६–२०

चंदराम

१.

कहि सयोग वियोग तें द्वै प्रकार शृंगार।
मिलन अनमिलन दपति सु कवि करत निरधार॥

शृंगारदर्पण, १०।१०

२.

क – इक पुरबे अनुराग अरु मान प्रवास बखान।
यह वियोग शृंगार रस तीन भाँति को जान॥

वही, १०।१७

ख – जब नायक सों नायिका करत कबहु अभिमान।
हेत पाय प्रगटत तहाँ लघु मध्यम गुरु मान॥

वही, ३।१०

रसिकविहारी

१.

होत वियोग शृंगार में तीन भेद ए जानि।
कहि पूरब अनुराग पुनि, मान प्रवास बखानि॥

काव्यसुधाकर, १०।६

लछिराम

१.

विप्रलम्भ के भीतर पूर्वनुराग।
मान फेरि सु प्रवासैं गनि बड़ भाग॥

महेश्वरविलास, ४।२८०

२.

सापराध पति हेरत रिसमय मान।
लघु मध्यम गुरु बरनत त्रिविध सुमान॥
पर तिय बदन विलोकत पतिहि रिसाय।
छूटे छनही मे फिर आनंद पाय॥

वही, ४।२८८

३.

प्रथम देव थिर हाँसे सेत जो रंग।
विछबि बोलि सु उछलिबो भाव प्रसंग॥
बैवो बदन जु हँसियो ग्रुर लघु राग।
सु अनुभव संचारी मुद बड़ भाग॥

वही, ४।३१५–१६

*

सप्तम अध्याय

रसदोष

केशव

१.

राजत रंच न दोषजुत कविता वनिता मित्र ॥
बुंदक हाला होत ज्यों गंगाधर अपवित्र ॥
विप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजे मित्र ।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषनसहित कवित्त ॥

कविप्रिया, ३।४-५

२.

प्रत्यनीक नीरस बिरस 'केसव' दुःसंधान ।
पात्रादुष्ट कवित्त बहु करहि न सु कवि बखान ॥

रसिकप्रिया, १६।१

३.

जहँ सिंगार बीभत्स भय, बीरहि बरने कोइ ।
रौद्र सु करुना मिलत ही, प्रत्यनीक[1] रस होइ ॥

वही, १६।२

४.

जहाँ दंपती दुहुँ मिले सदा रहे यह रीति ।
कपट करे लपटाय तन नीरस[2] रस की प्रीति ॥

वही, १६।४

५.

जहाँ सोक भरि भोग को वरनतु है कवि कोइ ।
'केसवदास' हुलास सों, तही विरस[3] रसु होइ ॥

वही, १६।६

१. परंपरागत 'प्रतिकूल विभावादि ग्रह', नामक रसदोष में अंतर्भुक्त किया जा सकता है ।

२. इसे 'रसाभास' से सुचित कर सकते हैं ।

३. वस्तुतः विरस और प्रत्यनीक (जिसे स्वयं केशव ने प्रतिपादित किया है) में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है ।

६.

एक होइ अनुकूल जहँ, दूजो है प्रतिकूल।
केशव दुःसाधन रस[1], सोभित तहाँ समूल॥

वही, १६।८

७.

जैसो जहाँ न बूझिये, तैसो कहिये पुष्ट।
बिनु बिचार जो बरनिये, सो रस पात्रादुष्ट[2]॥

वही, १६।१०

चिंतामणि

१.

संचारी थाईरसौ शब्द कथित जो होइ।
अरु अनुभाव की भाव ते व्यक्त कष्ट ते होइ॥
प्रतिकूल विभावादि को गहन आन सम उक्ति।
मुख को अनुसंधान नहिं अंगहि की बहु जुक्ति॥
प्रकितिनि को पुनि विपर्जय अनुमित बरनन जानि।
चिंतामनि कवि कहत हैं (ए) रस दोष बखानि॥

कविकुलकल्पतरु, ४।८४-८६

२.

क – अकांडप्रथन

भली भई बहुते अली लागी घर में आगि।
मेरे कर की गागरी लीन्ही साजन भागि॥

ख – अंगी का अननुसंधान

मै चौपर खेलन लगी निसा समैं में आजु।
बैठी सखी समाज में भूलि गए बृजराजु॥

१. इसे भी रसाभास से अपृथक् ही मानना चाहिए।
२. इसे मम्मट प्रतिपादित 'अपुष्टार्थ' नामक अर्थदोष में अंतर्भुक्त किया जा सकता है।

३ – अग की अतिविस्तृति

कालिंदी सुंदर नदी सुंदर पुलिन सरूप।
वृंदावन घन छाँह तकि कुंजनि रूप अनूप[1] ॥

कविकुलकल्पतरु, ४।६०–६२

कुलपति

१.

जहाँ विरस ताको कहै, तहाँ होय यह दोष।
बाधहि जहाँ विरुद्ध को, तहाँ करे रस पोष।
अनुचित ते नहि और है, रसहि बिगारन हेत।
उचित प्रसिद्ध बनाइये, यहै रसन के खेत ॥

रसरहस्य, ५।१३८–३६

२.

दोषरहित कीजै कवित सब सुखदायक होय।
तिन तजिबै कों कवित के, दोष सुनै कवि लोय ॥
शब्द अर्थ में प्रगट ह्वै, रस समझन नहि देइ।
सो दूषण तन मन विथा, जो जिय को हरि लेइ ॥

रसरहस्य, ५।१–२

३.

जाति कदंबन कुसुम बहु, बरनन मेघ वसंत।
पावस कोकिल किल शब्द, जरा अधिक रति कंत[2] ॥

वही, ५।१३६

४.

घरी द्वैक भेंट भईं तब ही तें उर माँझ,
वाही भाँति काम के नगारे की धमक है ॥

वृत्ति—यहाँ पर काम का सताना व्यग्य रखना चाहिए।[3]

१. ये सारे रस दोषों के उदाहरण हैं, लक्षण नहीं
२. समयादि विरुद्ध वर्णन को भी कुलपति ने प्रकृतिविपर्यय दोष के अ तर्गत रख दिया है।
३. कुलपति ने प्राचीन 'अनंगस्याभिधान' नामक रसदोष को 'काम को नाम' रसदोष स्वीकार किया है। उसी का उदाहरण प्रस्तुत है। गलती से उन्होने अनंग (न अंग) को काम समझ लिया है।

देव

१.

सरस निरस, संमुख विमुख स्वपरनिष्ठ पहिचानि।
भीत अभीत, उदास चित, उचित सुचित बखानि ॥[1]

शब्द रसायन, प्र०५, पृ० ५०

कुमारमणि भट्ट

१.

रस थाई प्रभृतिक कह्यो, नाम न ब्यंग्य हि बोध।
विभावादि प्रतिकूलता कष्टबोध तहँ सोध॥
फिरि फिरि दीपति रसहिं को, अकस्मात् विच्छेद।
अकस्मात् विस्तार त्यों अंग विस्तार को भेद॥
अंगि भूल्यो कि विरुद्ध अंग, प्रकृति विपर्यय लेख।
शृंगारादिक रसनि के दूषन इतने देख॥

रसिकरसाल, १०।१०–१०४

सोमनाथ

१.

रस को मुख गनि हनत हैं जिहिं शब्दारथ ओर।
तासों दूषन कहत है कवि रसिकनि के जोर॥
जाके राखे तें रहै दूरि करै मिटि जाय।
शब्दारथ अरु वाक को रस को दोष बताय॥

रसपीयूषनिधि, २०।१–२

भिखारीदास

१.

दोष सब्दहूँ वाक्यहूँ, अर्थ रसहु में होइ।
तिहि तजि कविताई करै, सज्जन सुमति जु कोइ॥

काव्यनिर्णय, २३।१

२.

क – रस अरु चर थिर भाव की, सब्द वाच्यता होइ।
ताहि कहत रसदोष हैं, कहूँ अदोषिल सोइ॥

काव्यनिर्णय, २५।१

१. इन रसदोषों की कोई परंपरा नहीं है। ये सर्वथा नवीन तो हैं पर युक्ति-संगत नहीं हैं।

ख – जहँ विभाव अनुभाव की कष्ट कल्पना व्यक्ति।
रसदूषन ताहू कहै, जिन्हैं काव्य को सक्ति।

वही, १५।६

ग - भाव रसनि प्रतिकूलता, पुनि पुनि दीपति जुक्ति।
येऊ हैं रसदोष जहँ असमै उक्ति न उक्ति।।

वही, २५।१०

घ – अंगहि को बरनन करे, अंगी देइ भुलाइ।
येऊ हैं रसदोष में, सुनौ सकल कबिराइ।।

वही २५।२४

ङ – एहि विधि औरो जानिये, अनुचित बरनन चोख।
प्रकृति विपर्जय होत है, अरु सिगरो रस दोष।।

वही, २५।३४

३.

सोक हास रति अद्‌भुतहि, लोन अदिव्ये लोग।
दिव्यादिव्यनि में सकति, नहीं दिव्य में योग।।

वही, २५।२६

४.

पुनि पुनि दीपति ही कहै, उपमादिक कछु नाहि।
ताहि ते सज्जन गनें याहू दूषन माँहि।।

वही, २५।२०

५.

बोध किए उपमा दिए, लिये पराये अंग।।
प्रतिकूलो रसभाव है, गुनमय पाइ प्रसंग।।[१]

वही, २५।१३

जनराज

१.

गुनगन भूषन रस उदित, दूषन प्रगट न होय।
बिग रु सब्दारथ सहित, कावि कहावै सोय।।

कवितारसविनोद, १।१४

१. दास ने रसदोषों के परिहार बताकर मौलिकता प्रदर्शित की है।

२.

रस संचारी थाई भाव सुनाम प्रगट ही मेलो।
अरु विभाव अनुभाव कष्टा अरु विभाव अनुभाव अकेलो॥
ह्वै विभाव अनुभाव प्रतिकूल रु दीपति पुनि पुनि होइ।
अरु अकंडअ प्रथनु विछादहि पुनि सुअग विस्तार सु लोई॥
अंग विसमति प्रकृतिविवर्जित पुनि अनंग अभिधान लहै।
रसविरुद्ध आदि ए नाम सुरस दूषन के प्रगट गहै॥

वही, ९।२३–२५

३.

क – सचारी को नाम

जिहाँ संचारी भाव को, नाम प्रकट ही होय।
ते साक्षात् दूषन सही, वर्नत है कवि लोइ।

ख – थाई भाव को नाम

थाई कहियत परगट होय।
स्थाई दूषन जानों सोय॥

वही, ६।१२६

ग – विभाव की प्रतीत कष्ट सों

जित विभाव की कष्ट सों, होत प्रतीत सुजान।
दूषन कष्ट विभाव सों, कविजन करत बषान॥

वहीं, ६।१३१

घ – अनुभाव की प्रतीत कष्ट सों

जिहाँ अनुभाव प्रतीत जो, महाकष्ट सों होय।
ते कष्ट अनुभाव है, दूषन दूषन जोय॥

वही, ९।१३३

ङ – प्रतिकूल विभाव

ह्वै विभाव औरे जहाँ, औरे भाउ उसूल।
रसदूषन ठहराव मै सो, विभाव प्रतिकूल॥

वही, ६।१३६

च – दीपति पुनि पुनि

है रस प्रथमै सी मिटि जाई।
बहुरि आय वैही दरसाई॥

दोष सु दीपति पुनि पुनि जानौ।
रस बरनन में चाहि न आनौ॥

छ – अकाडप्रथन

और रस वरनन करत, औरे रस कहि जाय।
सो अकाडदूषन प्रथन, वरनत है कविराय॥

कवितारसविनोद, ६।१४०

ज – रसच्छेद

जा रस को समयो जहाँ, सो न होय निरवाह।
दूषन रस मै होइ सो, वरनत है कविनाह॥

वही, ६।१४२

झ – अगीविस्तार

जित अंगी तै अंग विसेषि।
अंग विस्तार सुदूषन पेषि॥

वही, ६।१ ४

ञ – अगीविस्मृति

मुष्ष[1] होय सो कथ्यो न होय।
अगी विस्मृति जानो सोय॥

वही, ६।१४५

ट – प्रकृतिविवर्जित

चहियत जिहाँ न जैसो होइ।
विधिवस जोग मिलत है सोइ॥
रसदूषन मै कोविद गावै।
प्रकृति विवर्जित नाम कहावै॥

वही, ६।१४६

ठ – समयविरुद्ध

समे विरुद्ध जु वर्नियै, कहै ओर की ओर।
रजनी चकवा मुदित मन, वासुर[2] होत चकोर॥

ड देशविरुद्ध

देशभाव अनमिलत कै, देसविरुद्धा भाग।
मारूथल मै सोभियत, वृजिवेन वाजत डाग॥

वही, ६।१५३

१ मुख्य। २. वासर = दिन।

ढ – अनंगस्याभिधान

जिहाँ अंग जो ना चहै, सो तिहाँ ही दरसाय।
दोष अनंग अविधान सों, वर्नत है कविराय॥
वही, ६।·५४

ण – अमत नाम रसविरुद्ध

शृंगारहि विभत्स न आनों। वीर माँहि पुनि भय न बखानौ॥
करना[1] हास सहत न कीजै। अद्भुत रौद्र मिलाव न लीजै।
ए रस जित इन रसन सो, मिलै कहूँ जो आय।
सो अमित[2] दूषन महा, कविता मै ठहराय॥
वही, ६।१५५-१५६।

प्रतापसाहि

१.

अर्थ बोध के मुख्य मे, घात करत जो होइ।
ताको दूषण कहत हैं, शब्द अर्थ रस सोइ॥
काव्यविलास, ६।१

२.

अनुचित मे और नही, रसहि बिगारन हेत।
उचित प्रसिद्ध सु बरनिये, यहै रसन को खेह॥
वही, ६।१३५

३.

क – पदगत अरु पुनि वाक्यगत, शब्ददोष द्वै भाँति।
कहूँ सुपद के अंत में, नित्य अनित्य बिसाति॥
वही, ६।३

ख – जहीं निरस रस को करै, तहाँ दोष ये जानि।
नहि विरुद्ध बाधक जहाँ, रस तह पोष बखानि॥
वही, ७।१३६

४.

क – रस की स्वशब्द वाच्यता[3]

इहाँ रसवाच्य तो है, परन्तु शृगार का नाम न लिनो।
वही, ६।१२२ (वृत्ति)

ख – अन्य रस दोषों के उदाहरण

रस को अकस्माद विच्छेद वीर चरित नाटक मे है। रस को अकस्माद विस्तार वेणीसहार नाटक में है। अगी को विस्मरण रत्नावली में है।
काव्यविलास, ६।१३६ (वृत्ति)

*

१. करुणा। २. अमत। ३. भ्रांतिवश प्रतापसाहि ने 'स्वशब्दावाच्यता' को ही रसदोष मान लिया है।

परिशिष्ट १

[१६५० वि० सवत् के परवर्ती वे आचार्य जिन्होंने रीतिकालीन शैली और परपरा के अनुसार ही काव्यग्रंथ रचकर अपने रसविचार प्रस्तुत किए। ऐसे आचार्य कवियों में प्रमुख है जगन्नाथप्रसाद 'भानु' और बिहारीलाल भट्ट]

रस का स्वरूप और अभिव्यक्ति

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

१.

यह (अलौकिक) आनद प्रायः कवि के काव्यरचना की कुशलता तथा अनूठी उक्ति को जानकर उत्पन्न हुआ करता है। रस काव्य की आत्मा है, कहा है 'वाक्य रसात्मक काव्य'।

रसरत्नाकर, पृ० २

२.

रस का प्रादुर्भाव (विकास) तभी होता है, जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से स्थायी दशा परिपक्व दशा पर पहुँचती है—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥

इनमें विभाव (कारण) अनुभाव (कार्य) और सचारी भाव (सहायक) हैं और जिसमें रस स्थिति रहती है वह स्थायी भाव है।

वही, पृ० २

बिहारी लाल भट्ट

१.

श्रव्य काव्य में सरस रस, ध्वनि को भेद सुठाम।
अब आगे बरनन करत, रसगत व्यंग लमाम॥

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १५२।

२.

यहाँ अलक्ष्यक्रम जोई, भाव बीच रस व्यंजित होई।
ज्यों अन्वय संबंध बखानौं, भाव बीच रस तैसहिं जानो।
रसगत व्यंग नाम सो लीजे, तासें रस को बरनन कीजे॥

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १५३

३.

जैसे रसना से खटरस को सरस रस,
परस हरष चारु चोंप चखियतु हैं,
तैसे नवरस देखें सुने चित पावै चैन,
ब्रह्मानंद तुल्य तामें रुचि रखियतु हैं।
कहत 'बिहारी' पर निरगुन रूप वाको,
लख मे न आवै कैसो न्याय नखियतु हैं;
तासें वह भावन विभाव अनुभावन तें
होत है सगुन ताकी लीला लखियतु हैं।

वही, तरंग ५, पृ० १५३

४.

अनुभाव और विभाव अरु द्वै भाँति संचारी जहाँ।
मिल थाई को पूरन करें सो सुकवि रस जानो तहाँ॥
यह थाई ही रस रूप है पर फेर इतनो पाव है।
उन चार मिल ये होत रस उन चार बिन दो भाव॥

वही, त० ५, पृ० १६१

५.

थाई जो थिर रहत बीज ताकों अनुमानो,
आलंबन जिहि नाम सोई पृथ्वी पहिचानों।
उद्दीपन जल रूप ताहि सिंचन कर पावे,
पुनि अनुभाव अवश्य आय अंकुरित बनावे।
कह कवि 'विहार' इन सबन को जबहि जोग पूरन परै,
सो सरस सुखद रस-विटप बर नव सुरूप धारन करै।[1]

वही, त० ५, पृ० १५४-५५

६.

यह शृंगार सरस रस जिनके आश्रय से सरसानो,
ते प्रियतम अरु प्यारी यामें आलंबन पहिचानो।
उद्दीपन षट् ऋतु की सुखमा 'भूषन' 'फूलन माला'
सुंदर सखा, सखी अरु दूती बोलन बचन रसाला।

१. प्रभाव के लिये द्र० देव के शब्दरसायन का प्रकाश ३,पृ० २८ का अंश।

कविता आदि राग रागिनि बहु उपवन गमन जतायो,
सर, सरिता, सरसीरुह सुखमा, सुखद समीर सुहायो।
चंदन, चद्र, चाँदनी चमकनि, अतर सुगंध निहारी,
जे श्रृंगार रस के उद्दीपन वरणै विविध 'विहारी'।
अब अनुभाव कहत यहि रस के पाठकगण चित दीजे,
नैनन अरु आनन प्रसन्नता मधुर बचन गनि लीजे।
मृदु मुसुक्यान, मनोहर मूरति, अरु संतोष सुहावन,
कारे, लाल, हरीरे, पीरे, बहुविधि रंग गनावन।
क्रियन सहित कर करन चलाबै, अरु आनँद बरसैवो,
चचल चपल चलन चक्षुन को तिरछी दृष्टि चितैवो।
वे विभाव आलंबन दीपन जे अनुभाव गनाए,
वर्ण रूप अब वर्णन कीजत जस आचार्य बनाए।[1]

साहित्यसागर, त० ६, पृ०१६५

रस के उपकरण

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

विभाव

१.

कारण रस के आहि जे, ते विभाव अवदात।
आलंबन उद्दीपनहुँ दोय भेद विख्यात॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ०७

२.

क – रस को है अवलंब जहँ, आलंबन है सोय।

वही, भाग २, पृ०७

ख – रम्य नायिका पेखि, उपजे भाव सिंगाररस।
रीझि रहे हरिदेखि, तिय तन छवि सुकुमारता॥

वही, भाग ३, पृ० १७

ग – नायक गुण मंदिर युवा, युवती रीझहि देख।
ललकि रहीं ब्रजनायिका, निरखि श्याम को भेख॥

वही, भाग ३, पृ० ४६

१. इस उद्धरण में रससामान्य का तो नहीं किंतु श्रृंगार रस का सांगोपांग स्वरूप उद्घाटित है।

३.

जिन्हें विलोकत ही तुरत रस उद्दीपति होत।
उद्दीपन सु विभाव है, कहत कबिन के गोत॥

वही, भाग ४, पृ० ५८

४.

सखा सखी दूनी सुबन, उपवन षट्ऋतु पौन।
उद्दीपनहि विभाव मे वरणत कवि मतिभौन॥
चंद चाँदनी चंदनहुँ, पुहुप पराग समेत।
यौं ही राग सिगार सब, उद्दीपन के हेत॥

वही, भाग ४, पृ० ५८

अनुभाव

१.

कार्य रूप अनुभावतें, रस को अनुभव होत।

रसरत्नाकर, भाग २, पृ० ७

२.

जिनही तें रतिभाव को, चित में अनुभव होत।
ते अनुभाव सिंगार के, वरणत हैं कवि गोत॥
सात्विक भाव स्वभाव धृत, आनंद अंग विकास।
इनहीं ते रति भाव को, परगट होत विलास॥

वही, भाग ४, पृ० ७५

३.

सहजहि अंग बिकार कहँ, सात्विक भाव बखान।
ताके पुनि नव भेद गुनि, वरणत हैं मतिमान॥
स्तंभ स्वेद रोमांच कहि, बहुरि कहत स्वर भंग।
कंप वरणि वैवर्ण्य पुनि, आँसू प्रलय प्रसंग॥
अंतरगत अनुभाव में, आठहु सात्विक भाव।
जृंभा नवम बखानही, कोऊ कवि सतभाव।

वही, भाग ४, पृ० ७५

सचारी भाव

१.

थाई भावन को जिते, अभिमुख रहे सिताब।
जे नव रस में संचरैं, ते संचारी भाव॥
थाई भावन में रहत, या विधि प्रगट बिलात।

ज्यों तरंग दरियाव में, उठि उठि तितहि समात ॥
थिर ह्वै थाई भाव तब, परिपूरण रस होत।
थिर न रहत रसराज लौ, संचारिन के गोत ॥
थाई संचारीन को, है इतनोई भेद।
ते संचारिन के कहत, तैंतिस नाम निवेद ॥

वही, भाग ४, पृ० ८४

२.

क – असूया

सहि न सके सुख और को, यहै असूया जान।
अवध बधावा लखत ज्यों, कैकेइ दुख मान ॥

वही, पृ० ८५

ख – विषाद

हो उद्योग असार जब, लहै विषाद अनंत।
अब न धीर धारत बनत, सुरत बिसारी कंत ॥

वही, पृ० ८७

स्थायी भाव

१.

रस की थिरता जाहि में, थायि भाव उद्योत।
सो विभाव अनुभाव पुनि, संचारी मिलि होत ॥
थायिभाव रति हास पुनि, शोक क्रोध उत्साह।
भय ग्लानिहुँ विस्मय बहुरि निर्वेदहिं चितचाह ॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ०७

२.

क – रति

होत अपूरब प्रीति जहँ, सोई रति सह नेक।
जनकनंदिनी को अचल, रघुपति पद नित प्रेम ॥

वही, पृ० ९८

ख – हास[1]

रूप बचन बेढंग कछु, लखि सुनि आवत हास।
चारि पदारथ पाइये, एक भंग की आस ॥

वही, पृ०९९

१. हास के भेदोपभेद भी वर्णित हैं—उत्तम, मध्यम, अधम आदि।

ग – शोक

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परगास।
सब के प्यारे राम को, क्यों दीनों बनवास॥

वही, पृ०१००

घ – क्रोध

अपमानादिक ते जहाँ, क्रोध हिये मजबूत।
वक्ष अक्ष को फारिहौ, तौ अंजनि को पूत॥

वही, पृ०१००

ङ – उत्साह

अपर वीर को देखिकै, चाव बढ़ै चित आय।
मेघनाद को लखि लखन, हरषे धनुष चढ़ाय॥

वही, पृ० १००

च – भय

भय विकृत कछु रूप लखि, रक्षा कीन प्रतीति।
लखि बाढ़त वामन तनहिं, बाढ़ो वलि हिय भीति।

वही, पृ०१०१

छ – ग्लानि[1]

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जहँ चित जाय घिनाय।
सूपनखाहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय॥

वही, पृ०१०१

ज – आश्चर्य

विस्मय युत लखि सुनि कछू, अचरज रह उर छाय।
मृदुल गात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय॥

वही, पृ० १०१

झ – निर्वेद

हो विरक्त संसार सों, सो निर्वेद विचार।
यह असार संसार में, राम नाम है सार॥

वही, पृ०१०२

१. जुगुप्सा।

ञ – स्नेह

पुत्रादिक की प्रीति जो, सोई नेह कहात।
गोद लिये अति प्रेम सों, हरि मुख चुंबत मात॥

वही, पृ० १०२

बिहारीलाल भट्ट

विभाव (आलंबन और उद्दीपन)

१.

मुख्य हेतु है थाइ को, ताकों कहत विभाव।

साहित्यसागर, तरग ५, पृ० १५४

२.

सो बिभाव द्वै भाँति बखानों, प्रथम भेद आलंबन जानो।
द्वितिय भेद उद्दीपन लहिए, अब दोहुन के लक्षण कहिए॥
थाई को अवलंबन भावै, सो आलंबन भाव कहावै।
उद्दीपित रस जासें होई, भाव कहत उद्दीपन सोई॥

वही, त०५, पृ०१५४

३

पूर्ण अंगमय जानिए, पूर्ण नायिका जोत।
फिर जस जस भेदहि बढ़ै, तस तस अंतर होत॥
जैसे वृहत् अकास है, पूर्ण प्रकाश लखात।
घट मठ भेद उपाधि से, भिन्न नाम दरसात॥
पूर्ण अंग तिमि नायिका, ताके भेद तमाम।
जाति गुणादिक कर्म से, अलग अलग ये नाम॥[1]

वही, त०६, पृ० १६७

अनुभाव और सात्विकभाव

१.

अनुभव थाई कौ करत होत नाम अनुभाव।

वही, त०५, पृ०१५४

१. भट्ट जी नायिका को पूर्ण मानते हैं, आकाश की तरह। जैसे उपाधिभेद से घटाकाश, मठाकाश आदि नाम उस पूर्ण आकाश के होते हैं, उसी तरह जाति, गुण, अवस्था आदि के भेद से नायिका के भी असंख्य नाम हो जाते हैं।

२.

अब कहत सात्विक भाव जो लख परत ऊपर अंग ही,
इक थंभ पुनि रोमांच वेपथु स्वेद अरु स्वर भंग ही।
कह अश्रु सप्तम प्रलय अरु वैवर्ण्य नाम प्रमानिये।
यहि भाँति सात्विक भाव के यह आठ भेद बखानिये।।

वही, त०५, पृ० १६०

३.

थकित अंग सो थंभ है रोम रोम उठ अंग।
वेपथु[1] आवह कंप कछु स्वेद स्वेद कौ ढंग।।
अन्य वर्ण वैवर्ण्य है अश्रु नयन जल रंग।
चेत, अचेतन सम, प्रलय, गद्गद स्वर स्वर भंग।।
पूरब भावादिकन के बरणे लक्षण अग,
उदाहरण लख लीजियौ निज निज रस के संग।

वही, त०५, पृ०, १६१

सचारी भाव

१.

सचालन करिबौ करौ संचारी ते मान।

साहित्यसागर, त०५, पृ०१५४

२.

क – निर्वेद

दृश्य वस्तु सब मिथ्या जानो। यहै भाव निर्वेद बाखनो।

ख – ग्लानि

असहनता निरबलता होई। ताकों ग्लानि कहत सब कोई।

ग – असूया

पर उतकर्ष सहन ना होवै। ताहि असूया कविजन जोवै।

घ – मद

जहँ उत्कर्ष हर्ष को राखै। मद संचारी तिहि कवि भाखै।

ङ – शका

जहँ अनिष्ट की होय अबाई। ताहि कहत शंका कविराई।

१. कंप।

च – आलस्य

बैठत उठन न मन रुचि पावै। ताकौ आलस नाम कहावै।

वही, त०५, पृ० १५७

छ – मोह

सुध बिसरै चेतनता गोवै। मोह नाम पुनि ताको होवै।

ज – व्रीडा

जो निश्चित क्रिया अरु क्रीडा। तामे सकुचावै सो व्रीडा।

झ – औत्सुक्य और निद्रा

क्रिया सकल इंद्रिन की जोई। एक बार आरंभै सोई॥

औत्सुक्य सो नाम बखानौ, चित्त। त्वचा, थिर निद्रा जानौ॥

वही, त०५ पृ०१५८

ञ – अवहित्थ

आकारहु व्यवहारहु दोई। छिपै जहाँ अवहित्थ सु होई॥

वही त०५, पृ०१५६

स्थायी भाव

१.

निज निज रस में थिर रहैं ते थाई पहिचान।

वही, त० ५, पृ० १५४

२.

क – हास्य

वेष बनाय करहि कछु कौतुक तैसहि बचन सुहावै।

तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि हास्य कहावै।

ख – शोक

जहँ वियोग हो पिय पदार्थ कौ मिलन आश नहिं लावै।

तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शोक कहावै।

ग – क्रोध

मन प्रसन्न, वह तिरस्कार भयँ प्रतिकूलत्व जतावै।

तन मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि क्रोध कहावै।

घ – उत्साह

दान, दया, अरु धर्म, वीर मे परम प्रवृत्ती आवै।

तब मन की जो विकृति अपूरन सो उत्साह कहावै।

ङ – भय

प्रेतादिक सर्पादि व्याघ्र तन अविकृत विकृत लखावै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो भय भाव कहावै।

साहित्यसागर, त०५, पृ०१५५

च – घृणा

दर्शन पर्शन[1] सुमिरन जहँ कहुँ वस्तु घृणित को आवै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि घृणा कहावै।

छ – विस्मय

चमत्कार से भरी वस्तु कौं लखै, सुनै, सुधि आवै।
तब मन की जो विकृति अपूरन विस्मय सोइ कहावै।

ज – शमन[2]

तृष्णा अंतःकरण चतुर की जब निवृत्ति हो जावै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शमन कहावै।

वही, त० ५, पृ० १५६

*

१. स्पर्श। २. शम।

रसभेद

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

१.

रस कहिये नव भाँति के प्रथम कहत शृंगार।
हास्य करुण पुनि रौद्र गनि वीर सु चारि प्रकार॥
बहुरि भयानक जानिये, पुनि वीभत्स बखान।
अद्भुत अष्टम नवम पुनि, शांत रसहि उर आन॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ० ७

रस यथार्थ मे नव ही हैं दृश्य काव्य में शात रस उपयुक्त नहीं माना गया अतएव ८ ही भेद हैं। श्रव्य काव्य में शांत रस उपयुक्त है अतएव ९ भेद माने हैं। वात्सल्य तो प्रेम और दया की प्रधानता के कारण शृंगार और करुण का ही अग प्रतीत होता है। पुत्रादिकों के प्रति जो स्नेह भाव है सो वत्सल कहलाता है जैसे पुत्रवत्सल, भक्तवत्सल, शरणागतवत्सल इत्यादि। कोई भक्तिरस अलग मानते हैं परंतु वह भी शात रस के अंतर्गत है। नाटकादि मे सख्य और दास और प्रेयान् तीन रस और पाए जाते हैं परतु वे भी शातरसांतर्गत प्रतीत होते हैं। हाँ, प्रेयान् कभी कभी भावानुसार शृंगार और करुण मे भी वर्णित होता है। विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि शृंगार से हास्य की, रौद्र से करुण की, वीर से अद्भुत की और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति है। शात रस पृथक् है।[1]

रसरत्नाकर, प्रथम भाग, पृ०३

२.

जाको थायिभाव रति, सो शृंगार सुहोत।
मिलि विभाव, अनुभाव पुनि संचारिन के गोत॥
रति कहियतु जो मन लगनि, प्रीति अपर परजाय[2]।
थायी भाव शृंगार के, भल भाषत कविराय॥
परिपूरण थिरभाव रति, सो शृंगार रस जान।
रसिकन को प्यारो सदा, कविजन कियो बखान॥

१. भानु जी ने खड़ी बोली गद्य का माध्यम अपना कर रसांतर्भाव का विवेचन पस्तुत किया है। परंतु यह विवेचन चिंत्य है।

२. पर्याय।

आलंबन शृंगार के, तिय नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखी सखा, बन बागादि विहार॥
हाव भाव मुसुक्यानि मृदु, इमि औरेउ जु विनोद।
है अनुभाव शृंगार नव, कविजन कहत समोद॥
उन्मादिक सचरत तहँ, संचारी है भाव।
कृष्ण देवता श्याम रँग, सो शृंगार रसराव॥

वही, भाग ३, पृ०८

३.

क – सो शृंगार द्वै भाँति को, दंपति मिलन संयोग।
अटक जहाँ कछु मिलन की, सो शृंगार वियोग।

रसरत्नाकर, भाग ३, पृ० ८

ख – पिय प्यारी को मिलन जहँ सो सँयोग शृंगार।
सोहत ललना लाल सँग, चक चकई अनुहार॥

वही, भाग ३, पृ० ९

ग - जहँ बिछुरत तिय पीय सो है वियोग शृंगार।
हरि के बिछुरे राधिका, तजे सकल शृंगार॥

वही, भाग ३, पृ० १०

घ – हो आतुरता मिलन की, सो पूरब अनुराग।
मन मोहन मिलिहैं जबहिं, अलि तबही बड़भाग॥

वही, भाग ३, पृ०१०

ङ – लखि पिय को अपराध कछु, प्रिया ठानती मान।
प्रिय दृग लाली लखि तिया, तानहि भौह कमान॥

वही, भाग ३, पृ० १२,

च – सो प्रवास दुख भोगती, जिनके पिया विदेस।
कहा कीजिये हे अली, हरि पठियो संदेस॥

वही, भाग ३ पृ० १३,

४.

थाई जाको हास्य है, वहै हास्य रस जानि।
तहँ कुरूप कूदब कहब कछु विभाव ते मानि॥
भेद मध्य अरु ऊँच स्वर, हँसिबोई अनुभाव।
हरष चपलता और हू, तहँ संचारी भाव॥

स्वेत रंग रस हास्य को, देव प्रथम पति जास।
ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास॥

वही, भाग ३, पृ० ४६

५.

आलंबन प्रिय को मरण, उद्दीपन दाहादि।
थाई जाको शोक जहँ, वहै करुण रस यादि॥
रोदन महिपतनादि[1] जहँ, वरणत कवि अनुभाव।
निर्वेदादिक जानिये, तहँ संचारी भाव॥
चित्र कबूतर के बरण, वरूण देवता जान।
या विधि को या करुण रस, वरणत कवि कवितान॥

वही, भाग ३, पृ० ४८,

६.

थाई जाको क्रोध अति, वहै रौद्र रस नाम।
आलंबन रिपु रिपु उमँड़, उद्दीपन तिहि ठाम॥
भृकुटि भंग अति अरुणाई, अधर दसन अनुभाव।
गरब चपलता औरहू, तहँ संचारी भाव॥
रक्त रंग रस रौद्र को, रुद्र देवता जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान॥

वही, भाग ३, पृ० ४६

७.

जा रस को उत्साह शुभ, है इक थाई भाव।
सुरस वीर है चार विधि, कहत सबै कविराव॥
युद्धवीर इक नाम है, दयावीर बिय[2] नाम।
दानवीर तीजो सुपुनि, धर्मवीर अभिराम॥
युद्धवीर को जानिये, आलंबन रिपु जोर।
उद्दीपन ताको तबहि, पुनि सेना को सोर॥
अंग फरकन दृग अरुणाई, इत्यादिक अनुभाव।
गरब असूया उग्रता, तहँ संचारी भाव॥
चंद्र देवता वीर को, कुंदन वरण विशाल।
ताको कहत उदाहरण, सुनि जन होत खुशाल॥

वही, भाग ३, पृ० ५०

१. धरती पर लोटना। २. दूसरा।

८.

जाको थायी भाव भय, वहै भयानक जान।
दृश्य भयंकर गजब कछु, ते विभाव उर आन।।
कंपादिक अनुभाव तहँ संचारी मोहादि।
काल देव कोयला वरण, सुभयानक रसभादि।।[१]

वही, भाग ३, पृ० ५३

९.

थायी जासु गलानि है, सो वीभत्स जनाव।
पीब मेद मज्जा रुधिर, दुर्गंधादि विभाव।।
नाक मूँदिबो कंप तन, रोम उठब अनुभाव।
मोह असूया मूरछा, ये संचारी भाव।।
महाकाल सुरनील रंग, सो विभत्स रस जानि।
ताको कहत उदाहरण, रस ग्रंथनि उर आनि।।

वही, भाग ३, पृ० ५४

१०.

जाको थायी आचरज, सो अद्भुत रस गाव।
असंभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव।
बचन बिचल बोलनि कँपनि, रोम उठनि अनुभाव।
बितरत शंका मोह ये, तहँ संचारी भाव।।
जासु देवता चतुरमुख, रंग वखानत पीत।
सो अद्भुत रस जानिये, सकल रसन को मीत।।

रसरत्नाकर, भाग ३, पृ० ५५

११.

सुरस शात निर्वेद है, जाको थाया भाव।
सत संगति गुरु तपोवन, मृतक समान विभाव।।
प्रथम रूमांचादिक तहाँ, भाषत कवि अनुभाव।
धृत मति, हरषादिक कहे, शुभ संचारी भाव।।
शुद्ध शुक्ल रँग देवता, नारायण है जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान।।

वही, भाग ३, पृ० ५६

१. रासभ = गदहा आदि।

विहारीलाल भट्ट

१.

सो रस मुख्य प्रथम द्वै विधि कौ लौकिक एक गनायौ।
दूजौ नाम अलौकिक याकों भरतादिक ठहरायौ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधहु इंद्रिय विषय बखानैं।
इनसें जो प्रत्यक्ष प्रबोधित लौकिक तिहि कवि माने॥

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १६१

२.

मन से अनुभव होय, अलौकिक तीन भेद हैं ताके।
स्वाप्निक प्रथम स्वप्न मे, व्यापित ज्यो चरित्र ऊषा के।
मानोरथिक मनहि से कल्पित, उपनायक पुनि तीजौ;
काव्य पदारथ से प्रगटत है, यह लक्षण लख लीजो।

वही, तरंग ५, पृ० १६१

३.

सो रस मुख्य अष्ट विधि जानो। प्रथम शृंगार हास्य पुनि मानों।
करुणा रौद्र वीर निरधारौ। बहुर भयानक नाम विचारौ।
सप्तम पुनि वीभत्स बखानौ। अष्टम अद्भुत को पहिचानों।
नवम शांत पुनि कबियन भाखे। भरतादिक ने आठहि राखे।

वही, तरंग ५, पृ० १६२

४.

मत नवीन आचार्य गनाये। भक्ति पंच रस और गनाये।
प्रथम नाम शृंगार बखानों। दूजौ नाम सख्य रस जानों।
तीजौ दास्य नाम दरशायौ। वात्सल्य चौथो बतरायो।
पंचम शांत नाम रुचि राखे। भक्तन पंच .पच रस भाखे।
तिनमे शात शृंगार सुहावें। ये उन नव रस में मिल जावें।
दास्य सख्य वात्सल्य बताये। तीन शेष यह पृथक सुहाये।
भाव सहित अनुभाव प्रकारा। है इनको विस्तार अपारा।
सूक्ष्म रूप यामे लख लैहो। पूर्ण रूप सतन ढिग पैहौ।

वही, तरग ५, पृ० १६२

५.

रस की जहाँ प्रधानता, रसध्वनि सो ठहरात।
केवल भाव प्रधान सें, भावध्वनि हो जात॥

सब भावन मे मुख्य हो, रस नृप रहत प्रधान।
संग मे सोहत अगवत भावभृत्य अनुमानै।
(अप्रधान होकर)
कौनहु कौनहु समय पर भावहि होत प्रदीप।
ज्यों अखेट[1] आगे छता[2], पाछें चलत महीप।

वही, भाग २, तरग ६, पृ० ३३६

६.

क – जहँ कहुँ अनुचित रीति से रसवर्णत रस होय।
रसाभास ताकों कहत कवि कोविद सब कोय॥
ख – जहाँ कहूँ जिहि भाव की पूर्ण शाति ह्वै जाय।
भावशाति ताकौ कहत सुकबिन के समुदाय॥
ग – जहाँ कहूँ जिहि भाव को उदय होय जिहि ठौर।
भावोदय तासो कहत कवि कोबिद-सिरमौर॥
घ – जुगलभाव इक साथ हो मिले परस्पर आय।
भावसंध तासो कहत कवि-पडित - समुदाय॥

वहा, भाग १, तरग ६, पृ० ३३७–३८

*

१. शिकार। २. सहायक दल।

परिशिष्ट—२

[बिहारी लाल भट्ट का आध्यात्मिक शृ गार और आध्यात्मिक नायिकाभेद निरूपण समस्त रीतिकालीन साहित्य मे अनन्य होने के साथ ही यह अश महत्व पूर्ण भी है। अतएव इस अश को स्वतत्र रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। बिहारी लालभट्ट के इस निरूपण पर बैष्णव साहित्य का प्रभाव भी नितात स्पष्ट है।]

बिहारी लाल भट्ट

त्रयोदश तरंग

आध्यात्मिक नायिका भेद।

दोहा

प्रनवहुँ प्रथम अखड अज राम सर्व-सुख - सार।
गुरू अभिवंदन कर कथहुँ आध्यात्मिक सिंगार॥

चांद्रायण

जिते जगत में दृश्य अनेकन रूप हैं;
जिते विविध विस्तार अपार अनूप हैं।
जिते रूप अरु नाम चरित गुन ज्ञान हैं;
जिते कथन स्तुति शास्त्र प्रबध पुरान हैं।
तिन सब में त्रय भाँति भेद ज्ञानात्मकं,
आधिभौतिक अधिदैव और आध्यात्मकं॥
याके भेद अगाध, न सब पहिचानिहैं;
जिनके हिये विवेक, नेक सोइ जानिहैं।
त्रेता में श्रीराम मनुज तन धार के,
किए मानुषी कार्य चरित्र सम्हार कै।
ते चरित्र रचि संभु-उमा-संवाद में;
आध्यात्मिक में कथे सु इष्ट-प्रसाद में।
राम जन्म से और राज्य अभिषेक लौं;
घट ही मे सब घटित करै सत बेष लौ॥
सार तत्व को रहस दिव्य दरसाव है;
लक्ष्मण प्रति श्रीराम यही समझाव है।

कृष्ण सच्चिदानंद चरित बहु कीन है,
राचे रास-विहार सुनिल नवीन है।
यह चरित्र रस केलि कृष्ण को ऐसही,
जो जैसो करि लखै, ताहि पुनि तैसही॥
जो आधिभौतिक लखौ, तो काम विकास है;
जो अधिदैविक लखौ, तो भक्त प्रकास है।
जो अध्यात्मिक लखौ, ब्रह्म विलास है;
जा में जितौ अभास, तितौ तेहि भास है॥
अध्यात्मिक में कृष्णा आत्म पहिचानिए;
गोपी जन गुन-बृत्ति भेद बहु मानिए।
नायक आतम वही स्वामि पति जानिए;
सुघर नायिका प्रिया बृत्ति मन मानिए।
बृत्ति भेद से विविध नायिका भेद है;
समुझन लच्छन नाम सुबुध गुन बेद है॥

दोहा

जिनकौ स्वकिया, परकीया, गनिका कहत सिंगार।
ते सुचि अंतःकरन की बृत्ति तीन निरधार॥

प्रथम स्वकीया बृत्ति

स्वकिया है सत बृत्ति सुद्ध जिहि रीति है;
आत्म पुरुष प्रति प्रेम वही प्रति प्रीति है।

सात्विकी बृत्ति अपना संबंध केवल आत्मा ब्रह्म से रखती हैं। इसीको सात्विक ज्ञान कहते हैं। यथा—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु विद्धि सात्विकम्॥

× × ×

सब बृत्तिन सुख रूप सबन सिरमौर है।
आतम ब्रह्म सिवाय न जानत और है॥

सोरठा

उदाहरन निरधार करत ग्रंथ बढिहै अधिक।
सूछम कहन प्रकार, बहुत समझ लें है सुबुध॥

यह गनिका को तत्व वास्तविक है यही।
समुझत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही ॥

अवस्था वृत्ति

मुग्धा अरु मध्या बहुरि प्रौढा परम प्रवीन।
सब वृत्तिन की जानियै यहै अवस्था तीन ॥

छंद

वृति उदय जब होत, होति मुग्धा तबै,
थिरत जब कछु लहत, तबहि मध्या फबै।
जब निज कर्मन मध्य, कुसलता लहति है,
तब प्रौढा कौ रूप वृत्ति वह बनति है।
सब वृत्ति जब प्रौढ रूप कौं धरति है,
तब ही पूरन ब्रह्म भाव कौ भरति है।
तिहि अवसर पर होत जगत अध्यास है,
पर निर्द्वंद न होत द्वंद कौ भास है।
जे कछु अनुभव करत, जिन्है यह ज्ञान है,
प्रौढा को सुख अल्प तिया का जान है।

[इस प्रकार जितनी नायिकाएं, उतनी वृत्तियाँ है। पर सभी भेदों को न कह कर सक्षिप्त रूप मे मुख्य नायिका भेदों पर ही संघटित किया गया है।]

अथ वृत्यष्ट अवस्था

अष्ट नायिका

अष्ट अवस्था वृत्ति को कहियत यों समुझाय।
कहत सूक्ष्म ससुझत बहुत, जिनहि लक्ष अधिकाय ॥

छंद

अंत.करन पवित्र वृत्ति जब चहत है,
काम क्रोध मद मोह बिकारन तजत हैं।
सतगुन दीपप्रकास दंभतम मेंटि कै,
भूषन सत्व समस्त धार चित चाह से।
रहत प्रिया लौ लाय अधिक उत्साह से।
चौद्रिग संपति दिव्य दिव्य दरसाय कै,
को कहि बरनै पार रही छवि छाय कै।
जेतौ फिर आनंद वृत्ति हिय ज्ञात है,
सो वह धनधन समय कहो नहिं जात है।

यों सब साज सजाय बुद्धि थिर करत है,
मिलै मोहि पिय आज चित्त यो चहत है।
जो मुमुक्ष-पद हेत लेत अधिकार है,
यहि विधि ताकी वृत्ति होत जग सार है।

बासकसज्जा आदि लक्षण

वासकसज्जा तत्व वास्तविक है यही,
समुझत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।
आत्मलक्ष,पतिप्राप्ति होत नाही जबै,
सो वृत्ति उकताति होति उक्ता तबै।
तदपि न होवै प्राप्ति सर्व-सुख-सारिका,
लक्ष ओर चल जाति होति अभिसारिका।
पहुँचत लक्ष समीप भास नाहि होवही,
विप्रलब्ध तव होत वृक्ष बुधि होवही।
पुनि बीते कछु काल लखत वह जोत है,
खडित पावन लक्ष खंडिता होत है।
लक्ष पूर्ववत लखो नही अनरीति है,
रहो न पुनि वह प्रीति न वह परतीति है।
गई जहाँ परतीति प्रीति हूँ जात है,
फिर पिव से ह्वै विमुख जगत भरमात है।
याने बासें कियो फेर एक वार को,
वाने बासे कियो सु कोस हजार कौ।
फिर पाछू पछतात कीन्ह कह रान ने,
तलफत व्याकुल फिरत दरस के कारने।
ज्यों दरिद्र पथ माँहि परी निधि पावही,
काहू विधि खोजाय ध्वनित पछतावहीं।
ज्यो मछली जलकूद थलहु बिलगात है,
पुनि जल भेटन हेत अधिक तड़फात है।
त्यों यह बंचित वृत्ति पतिहि पछतात है,
कलहांतरिता होत गुरुन को ज्ञात है।
कलहंतरिता लखहु वास्तविक है यही,
जानत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।

दोहा

जबहि वृत्ति वह लक्ष से विवस विमुख ह्वै जात।
तब सत्ता व्यवहार में परतन मन पतियात॥

पुनि ज्यों तिय प्रिय सखी की लै सहाय सुख लेत।
त्यों यह सतगुरु चरन के वृत्ति बढ़ावन हेत।।
तब लगि ताकौ लक्ष वह दूर देस चलि जात।
अनभ्यास के कारने आंत अंतर अधिकात।।
मन वृत्ती चचल अधिक थिर न रहत कछु पास,
याके निज बस करन कौ है उपाय अभ्यास।

छंद

दूर देस चलि जात लक्ष नाहि मिलत है,
प्रोषितपतिका रूप वृत्ति तब बनत है।
तब गुरु ज्ञान लखाय पंथ निरबान की,
तब वह बीतै पूर्ण अवधि अज्ञान की।
बहुरि लक्ष कौ उदय होत सुखसार है,
दरसत आत्मप्रकास अखड अपार है।
आवत लक्ष समच्छ उच्च सुख लहति है,
आगतपतिका रूप वृत्ति तब बनति है।
फिर वाकौ सुख वही अनुभवी लै सकै,
ज्यों गूँगौ गुड़ खाय, स्वाद नाहि कै सकै।
जब वह आतम लच्छ स्वबस निज करत है,
स्वाधिनपतिका रूप वृत्ति तब बनत है।
वृत्ति सगुन की होय तो प्रभु बस रहत है,
जसजस चाहत भक्त प्रभु तस करत है।
भक्तन कौ सुख पाय चरित बहु करत है,
भक्तन इच्छा पाप सगुन बपु धरत है।
निर्गुन सेवी होय तो नित्य प्रकास है,
लच्छन छोड़त साथ रहै नित भास है।
स्वाधिनपतिका तत्व वास्तविक है यही,
जानत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।
जो इमि आतम लक्ष माँहि भरपूर है,
सो प्रभु कों नहिं दूर, न वहि प्रभु दूर है।
चाहे जग व्यवहार रचै चित चीन है,
लिप्त न वामें होत ब्रह्म लवलीन है।

साहित्यसागर, भाग २, तरंग १३, पृष्ठ ५२५–३७

*

परिशिष्ट—३

रीतिकालीन रसग्रंथों का परिचय और विवरण

क—रससामान्य निरूपक ग्रंथ

रसिकप्रिया (केशव), सुधानिधि (तोष), भवानीविलास और भाव-विलास (देव), रससाराश (भिखारीदास), रसप्रबोध (रसलीन), रसवृष्टि (शिवनाथ), रसचंद्रिका (उजियारे कवि), जगद्विनोद (पद्माकर), नवरसतरंग (वेनी प्रवीन), काव्यबिलास (प्रतापसाहि), रसिकविनोद (चंद्र शेखर वाजपेयी), रसरंग (ग्वाल कवि), काव्यसुधाकर (रसिकविहारी), शृंगारदर्पण (नंदराम), महेश्वरविलास (लछिराम)।

ख—शृंगार और नायिकाभेद विषय ग्रंथ

हिततरंगिणी (कृपाराम), सुंदर शृंगार (कविराज सुंदर), साहित्यलहरी (सूरदास), रामंमजरी (नंददास), बरवै नायिकाभेद (रहीम), शृंगार-मंजरी (चिंतामणि), रसराज (मतिराम), सुखसागरतरंग और रसविलास (देव) शृंगार विलास (सोमनाथ), शृंगारनिर्णय (भिखारी दास), अंग-दर्पण (रसलीन) रसचंद्रोदय (उदयनाथ)।

ग—अनेकांग निरूपक ग्रंथ

कविकुलकल्पतरु (चिंतामणि), रसरहस्य (कुलपति मिश्र), काव्य-रसायन अथवा शब्दरसायन (देव), रसिकरसाल (कुमारमणि), रसपीयूषनिधि (सोमनाथ), काव्यनिर्णय (भिखारीदास), रूपविलास (रूपसाहि), कविता-रस-विनोद (जनराज), रसकल्लोल (करन कवि), व्यंग्यार्थकौमुदी (प्रताप साहि)।

उद्धरित ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय

१—केशव : रसिकप्रिया और कविप्रिया

केशव ने 'रसिकप्रिया' की रचना रसनिरूपण के लिये १६४८ विक्रम संवत् में की थी। उन्होंने ग्रंथ के आरंभ में इसके रचनाकाल को सूचित करते हुए लिखा है—

> संवत सोरह सै वरष, बीते अठतालीस।
> कातिग सुदि तिथि सप्तमी, वार बरनि रजनीस॥

रसिकप्रिया, १।११

कविप्रिया की रचना इसके दस वर्षों के बाद १६५८ विक्रम संवत् में इन्होंने की। इसके आरंभ मे भी समय का साक्ष्य है—

प्रगट पंचमी को भयो, कविप्रिया अवतार।
सोरह सै अठावना, फागुन सुदि बुधवार॥

कविप्रिया, १।४

कविप्रिया अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आधारभूमि पर खड़ी है। यह कवि-शिक्षापरक अनेकागनिरूपक ग्रथ है। अतएव एक साथ ही इस ग्रथ में कवित्त-दूषण (काव्यदोष), कविव्यवस्था (कवियों के भेद), कविप्रसिद्धि, कविरीति, अलंकार, काव्यभेद आदि सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों एव विषयो का प्रतिपादन किया गया है। अब ये दोनो पुस्तकें 'केशव ग्रथावली' के अतर्गत हिदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हो गई है। ग्रथावली के संपादक हैं प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

२—चिंतामणि : कविकुलकल्पतरु

इस पुस्तक का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जनवरी सन् १८७५ ई० मे हुआ था। यह एक अनेकागनिरूपक ग्रथ है। इसमे कुल २०६ पृष्ठ है और समस्त ग्रंथ ८ प्रकरणों मे विभक्त है। ग्रथ के अत मे लिखा है—'हस्ताक्षर चंडीदत्त ब्राह्मण काव्यकुब्ज'। ग्रथरचना का उद्देश्य बताते हुए चिंतामणि ने लिखा है—

जे सुरवानी ग्रंथ है तिनको समुझ विचार।
चिंतामनि कवि कहत है भाषा कवित विचार॥

कविकुलकल्पतरु, १।३

यह ग्रथ प्राचीन प्रकाशन होने के कारण दुर्लभ तो है पर पुराने पुस्तकालयों में उपलब्ध है। नागरीप्रचारिणी, काशी के पुस्तकालय मे प्राप्त है।

३—तोष : सुधानिधि

तोष के सुधानिधि का प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १८९२ ई० में हुआ था। इसके बाद प्रायः न तो इसका कोई दूसरा सस्करण हुआ और न कोई अन्य प्रकाशन ही। दुर्लभ होने पर भी ना० प्र० सभा पुस्तकालय जैसे प्राचीन ग्रथों के सग्रहालय मे उपलब्ध है।

इस ग्रंथ मे दोहो और कवित्तों को मिलाकर कुल ५५७ छंद हैं। अंत मे ३ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें सख्या नही दी हुई है। यदि उन्हे भी जोड़ ले तो पूरी सख्या ५६० तक पहुँच जाती है। तोष ने 'सुधानिधि' का रचनाकाल बताते हुए कहा है—

संवत् सत्रह से बरष गो इक्यानबे बीति।
गुरु अषाढ़ की पूर्णिमा रच्यो ग्रंथ करि प्रीति॥
सुधानिधि, छं० ५५५

इसके लिपिकाल को इस प्रकार निर्दिष्ट किया है
सर श्रुति निधि महि माघवदि तिथि द्वितिया दिन मद।
लिख्यौ सुधानिधि ग्रंथ यह संत सुकबिसानंद॥
वही अंतिम छंद

ग्रंथरचना का उद्देश्य इस प्रकार है—
यहि पियूषनिधि नाम, ग्रंथ रचत हौं रसिक हित।
जाको रस अभिराम, सुखद पीजियतु श्रवनमुख॥
कवित बीचिका बीच ही अर्थांतर गन जाइ।
सुलभ सुमति को कुमति को दुरलभ जानो सोइ॥
वही, ६।७

अतएव ग्रंथ प्रणयन का मुख्य उद्देश्य रसनिरूपण है और यह एक रस-सामान्य निरूपक कृतित्व है। तथापि अन्य रसों की अपेक्षा रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुसार शृंगार को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। वह इसी से स्पष्ट है कि कुल ५५७ छंदों में से ४४४ छंद तो शृंगारनिरूपण में खपाए गए हैं और शेष ११३ छंद अन्य सभी रसों के लिये।

४—मतिराम : रसराज

मतिरामप्रणीत रसराज मतिराम ग्रंथावली के अंतर्गत उपलब्ध है। मतिरा ग्रंथावली का प्रकाशन गंगा ग्रंथागार, लखनऊ से संवत् १९८६ में हुआ था। इसका परिचयभाग भी उसी प्रकाशन से सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों ही ग्रंथों के संपादक हैं कृष्णबिहारी मिश्र।

मतिराम का रसराज एक शृंगाररस निरूपक ग्रंथ है। अतएव इसमें शृंगार और उसके सभी उपकरणों का ही सोदाहरण उल्लेख है।

५— कुलपति : रसरहस्य

यह एक अनेकांगनिरूपक ग्रंथ है। इसका प्रकाशन इंडियन प्रेस, प्रयाग से संवत् १९५४ में हो चुका है। इसका रचनाकाल है विक्रम संवत् १७२७, जैसा कुलपति ने स्वयं अपने ग्रंथ में निर्दिष्ट किया है—
संवत् सत्रह सौ बरस, अरु बीते सत्ताइस।
कादि बदि एकादसी, बार बरनि बानीस॥
रसरहस्य, ८।१०

इस ग्रंथ मे संस्कृत के आचार्य मम्भट के अनुकरण पर विविध काव्यागों का निरूपण हुआ है। ऐसा स्वय कुलपति ने स्वीकार किया है—

जिते साज हैं कवित के, मंमट कहे बखानि।
ते सब भाषा मे कहे, रस रहस्य मे आनि॥

रसरहस्य, ८।१०

६—देव : रस विलास, भाव विलास, सुखसागरतरंग, शब्दरसायन आदि।

क—सुखसागरतरंग

यह बालदत्त मिश्र के द्वारा सपादित होकर लखनऊ से संवत् १९५४ में प्रकाशित हुई थी। इसकी प्राप्ति सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद, बमई बुकसेलर, अयोध्या जि० फैजाबाद से हो सकती है। इस ग्रथ मे कुल ८३५ छद और २७६ पृष्ठ है। यह एक शृंगार-रस-निरूपक ग्रथ है।

ख—भावविलास

यह ग्रंथ तरुण भारत ग्रथावली कार्यालय, दारागज, प्रयाग से सवत् १९९१ मे प्रकाशित हुआ था। इस ग्रथ ५ विलास है और कुल १६८ पृष्ठ। पद सख्या या दोहा संख्या नही दी गई है। यह एक रस-सामान्य निरूपक ग्रथ है।

ग—रस विलास

यह पुस्तक भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १९०० ई० मे प्रकाशित हुई थी। इसमें केवल नायिका भेदों का निरूपण है। भावविलास के बाद इसकी रचना देव ने की थी, जैसा उन्होंने स्वय कहा है—

रसविलास रचि ग्रंथ सौ कहत दूसरी बार।
वही नायिकाभेद सब सुनहु नवीन प्रकार॥

रसविलास, विलास ४, पद ४०।

घ—शब्दरसायन

इसका प्रकाशन हिंदी साहित्य समेलन प्रयाग से हुआ है। इसके सपादक हैं श्री जानकीनाथ सिंह 'मनोज'। यह अनेकाग निरूपक रीति ग्रथ है। अन्य रीतियों के बीच मे ही रसरीति का निरूपण किया गया है।

—ङभवानीविलास

इसका प्रकाशन भी भारतजीवन प्रेस, काशी से हुआ था। यह एक रस-सामान्य का निरूपक ग्रथ है।

टिप्पणी—देव के समस्त ग्रंथों का रचनाकाल सवत् १७४६ से सवत् १७९० बताया

जाता है। कहा जाता हैं कि इन्होने ७२ ग्रंथों की रचना की थी। इनमें से २५ ग्रथों को रीतिग्रथ बताया जाता है। सभी रचनाएँ उ लब्ध नहीं हैं। उपर्युक्त ग्रथ ही अधिक महत्वपूर्ण भी है और उपलब्ध भी। रसविलास उनकी अतिम रचना है। उसका रचनाकाल स्वय देव ने इन शब्दों में निर्दिष्ट किया है—

संवत् सत्रह सै बरस और तिरासी जानि।
रसविलास दसमी विजय, पूरन सफल कलानि॥

रसविलास

७—कुमारमणिभट्ट : रसिकरसाल

कुमारमणि का रसिकरसाल एक अनेकाग निरूपक रीतिग्रंथ है। इसका प्रथम प्रकाशन श्रीविद्याविभाग, कॉकरौली से सवत् १६६४ में हुआ था। इसका रचना काल संवत् १७७६ है, जैसा स्वयं कुमारमणि ने अपने ग्रंथ में निर्दिष्ट किया है—

सबरस सागर कृष्ण गुन ग्यान ध्यान धरि प्रीति।
हरिवल्लभ सुत इनि रचि, कविताई की रीति॥
रससागर रवि तुरग विधु (१७७६) सवत् मधुर वसंत।
विकस्यो रसिकरसाल लखि हुलसत सुहृद वसत॥

—रसिकरसाल, अंतिम अंश, पृ० २६६

पूरा ग्रंथ दस उल्लासों में विभक्त है। नवीनता या सिद्धात निरूपण ग्रंथ का उद्देश्य नही बल्कि रीतिकालीन अन्य आचार्यों की तरह भाषा मे काव्यशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन ही ग्रथकर्ता का अभीष्ट है। इस ग्रंथ पर मंमट के काव्य-प्रकाश का ही समग्र प्रभाव है—

काव्यप्रकाश विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पडित सुकवि 'कुमारमति' कीन्हौं रसिक रसाल॥

रसिकरसाल, १।४

८—सोमनाथ : रसपीयूषनिधि और श्रृंगारविलास (ह० लि०)

सोमनाथ ने १७६४ वि० सं० के लगभग उक्त रचनाएँ रची थीं। ये दोनों ही ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के याज्ञिक संग्रह मे इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। रसपीयूषनिधि का लिपिकाल संवत् १७६८ लिखा हुआ है। सोमनाथ ममट की परपरा के ही ध्वनिरसवादी आचार्य थे। अतएव इसमे ध्वनि के अतर्गत ही रसनिरूपण भी है। श्रृंगार-विलास कोई स्वतंत्र ग्रथ नही है। इसे रसपीयूषनिधि का ही रूपांतर समझना चाहिए।

६—भिखारीदास : रससारांश, शृंगारनिर्णय और काव्यनिर्णय

दास का पहला ग्रंथ रससाराश है। इसे इन्होंने सवत् १७६१ मे रचा था। इन्होंने स्वयं ग्रंथ मे लिखा है—

सत्रह सै इक्यानबे नभ सुदि छठि बुधवार।
अरवर देश प्रतापगढ़ भयो ग्रंथ अवतार॥

रससाराश, पद ५८४

शृंगारनिर्णय और काव्य निर्णय इसके बाद रच गए हैं। रससाराश रस-सामान्य निरूपक ग्रथ है, शृंगार निर्णय मे केवल शृंगाररस का निरूपण किया गया है तथा काव्यनिर्णय एक सर्वांगनिरूपक रीतिग्रंथ है। इन ग्रंथों की कई हस्तलिखित प्रतियाँ तथा प्रकाशित संस्करण भी पूर्णतः उपलब्ध थे, पर अब नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी की आकर ग्रंथमाला में प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित होकर दो खडो मे ये ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। प्रथम खड में रस-साराश, शृंगारनिर्णय और छंदार्णव को समाविष्ट किया गया है तथा द्वितीय खंड मे केवल काव्यनिर्णय को। काव्यनिर्णय के दो प्रकाशन पहले भी हो चुके हैं। प्रथम तो बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से सन् १६३७ ई० मे हुआ था और दूसरा कल्याणदास ब्रदर्स, वाराणसी से सन् १६५६ ई० मे। भिखारीदास ग्रथावली के दोनों खड जो ना० प्र० स० काशी से प्रकाशित हुए हैं, वे क्रमशः सं० २०१२ मे और सं० २०१४ में।

१०—रसलीन : रसप्रबोध

रसलीन (या सैयद गुलाम नवी) ने रसप्रबोध, अंगदर्पण और नायिका-भेद नामक तीन पुस्तकें लिखी थीं। इनमे से रसप्रबोध ही रस-सामान्य निरूपक ग्रंथ है। इस ग्रंथ का प्रकाशन १८६५ ई० मे भारतजीवन प्रेस, काशी से हुआ था। रसप्रबोध की रचना रसलीन ने १७६८ विक्रम सवत् में की थी। उन्होंने स्वयं लिखा है—

सत्रहसै अट्ठानवे मधुसुदि छठ बुधवार।
विलगराम राम में आइके भयो ग्रंथ अवतार॥

रसप्रबोध, ३

इस पुस्तक में कुल १४० पृष्ठ हैं तथा ११९५ दोहे। रसलीन का दावा है कि इस लक्षण ग्रंथ को पढ़ लेने के अनंतर पाठक को दूसरे रसग्रंथ के अवलोकन और अध्ययन की कोई अपेक्षा नही होगी—

बांचि आदि ते अंतलों यह समुझै जो कोई।
ताहि और रसग्रंथ की फेर चाह नहि होइ॥

वही, ४

११—रूपसाहि : रूपविलास (ह० लि०)

रूपसाहि ने वि० स० १८१३ मे रूपविलास नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचा था—

गन ससि वसु ससि ता जानिए संवत अंक प्रकास।
भादों सुद्धें दसमी शनौ जनम्यौ रूप विलास॥

रूपविलास, १।१०

आप पन्ना के रहनेवाले थे और कायस्थ कमलनैन के पुत्र एवं बुदेलानरेश हिंदूपति के आश्रित कवि थे। यह ग्रथ १४ विलासों मे विभक्त है तथा इसमे कुल ७२० छंद है। रूपविलास का प्रकाशन अभी तक नही हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के याज्ञिक सग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। ग्रथरचना के ४ वर्षो के बाद की यह प्रतिलिपि है। इसे अनेकागनिरूपक रीतिग्रथ ही मानना चहिए, क्योंकि इसमें काव्यलक्षण, छंद, नायिकाभेद, रस अलकार आदि विविध काव्यागों का निरूपण किया गया है। पाँचवें विलास से लेकर ११ वें विलास पर्यन्त रसवर्णन है। उसमें भी ६ विलासों मे केवल नायिकाभेदो का विवरण दिया गया है।

१२—शिवनाथ : रसवृष्टि

शिवनाथ ने रसवृष्टि नामक रसग्रथ १८२८ विक्रम संवत् में रचा था। उदयनाथ के रसचद्रोदय और शिवनाथ के रसवृष्टि नामक रसग्रंथों का समिलित प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सन् १८८२ ई० में हुआ था। इसकी प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। उदयनाथ के रसचंद्रोदयवाले खंड मे तो मात्र नायिकाभेदों का निरूपण है पर शिवनाथ के रसवृष्टि मे नौ रसो का भी वर्णन किया गया है। रसवृष्टि में कुल १६ रहस्य है। प्रारभ के १५ रहस्यों मे तो नायिकाभेद, नखशिख, तनभूषण आदि रसोपादानों का उल्लेख है किंतु सोलहवें रहस्य मे नव रस का वर्णन किया गया है। अतएव इसे सर्वरसनिरूपक रीतिग्रंथ मानना चाहिए।

१३—जनराज : कवितारसविनोद (ह० लि०)

कवितारसविनोद के प्रणेता जनराज जयपुर के निवासी थे और इनका जन्म वैश्य कुल मे हुआ था। इनका असली नाम डेडराज था, जैसा इन्होंने स्वयं ग्रथ के अत मे लिखा है। महाराज पृथ्वी सिंह इनके आश्रयदाता थे। 'कवितारसविनोद' एक सर्वरसनिरूपक ग्रंथ है। इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक सग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। इस ग्रंथ का रचनाकाल वि० स० १८३३ है, जैसा इन्होंने स्वयं निर्दिष्ट करते हुए लिखा है—

अठारहि से तीतस भए सुभ सवत्त जेष्ठ सभा वेरु वषानौ
सेत सुपक्षि तिथू दसमी अरुवार महावर भोम सुजानौ ।।
हस्त निषवृ जु सिद्धि सुजोग विषै जनराज कहे उर आनौ ।
ये कविता रसग्रंथविनोद सपूरन मेद कियौ सुषदानौ ।।

कवितारसविनोद, २४। ४४

इस प्रति का लिपिकाल संवत् १६०६ दिया हुआ है । इस ग्रथ मे कुल २४ विनोद है तथा ३०५ पन्ने ।

१४—उजियारे कवि : रसचन्द्रिका (ह० लि०)

ऐतिहासिको के अनुसार उजियारे कवि ने जुगुलरसप्रकाश और रसचंद्रिका नामक दो रसग्रथ रचे थे । 'जुगुलरसप्रकाश' देखने का अवसर तो मुझे नही मिला है, पर रसचद्रिका की खडित और जीर्णशीर्ण प्रति नागरीप्रचारिणी के याज्ञिक सग्रह मे उपलब्ध है । इस ग्रथ मे १५ प्रकाश तो पूरे हैं, १६ वें प्रकाश का थोड़ा सा अश ही विद्यमान है । शेष अंश कटा हुआ है । पता नही इस ग्रंथ मे कुल कितने प्रकाश रहे होगे । मुझे इसके कुल ६६ पन्ने देखने को मिले । इन्होंने अपने आश्रयदाता दौलतराम के लिये यह ग्रंथ लिखा है, जैसा कि प्रत्येक प्रकाश की पुष्पिका से ज्ञात होता है—

इति श्री रसचद्रिंकाया दौलतिराम विरचिताया—
रसांगीभाववर्णन पंचदश प्रकाशः ।

रसचद्रिका, १५ वे प्रकाश की पुष्पिका

यह एक रस-सामान्य-निरूपक रसग्रंथ है । प्रत्येक रस को पृथक् पृथक् प्रकाश में लिखा गया है । इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता यह है कि परंपरागत अन्य आचार्यों के मत उद्धृत कर रससबधी अनेक समस्याएँ उठाई गई हैं और उत्तर के रूप में उनके अनेक समाधान भी प्रस्तुत किए गए हैं । यह प्रश्नोत्तर चाहे जितना भी सफल हुआ हो, पर दृष्टिकोण निस्सदेह नितात विवेचनात्मक एवं वैज्ञानिक है । इतिहासज्ञ विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ का प्रणयनकाल वि० सं० १८३७ के अनंतर रहा होगा । स्वय ग्रथकर्ता ने जिस अश मे रचनाकाल का निर्देश किया होगा, वह अश इस हस्तलिखित प्रति मे फटा हुआ है ।

१५—पद्माकर : जगद्विनोद

पद्माकर का रचनाकाल १८६७ वि० स० के लगभग माना जाता है । पद्माकर ने कई पुस्तके लिखी थी किंतु काव्यशास्त्र पर मात्र तीन रचनाएँ हैं—जगद्विनोद, आलीजहाप्रकाश और पद्माभरण । पद्माभरण तो अलकारग्रंथ

है किंतु आलीजहाप्रकाश और जगद्विनोद मे कोई तात्विक अंतर नही है। दो आश्रयदाताओं के नाम पर थोडे बहुत हेर फेर के साथ दोनों पुस्तकों को प्रस्तुत कर दिया गया है। अतएव पद्माकर का एकमात्र रसग्रथ जगद्विनोद ही है। इस ग्रथ के अनेक प्रकाशन भी हो चुके हैं तथा अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक पुस्तकालयों और सग्रहालयों मे सुरक्षित है (द्रष्टव्य—पद्माकरग्रंथावली, संपादक-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० स०, काशी, स० २०१६, सपादकीय पृ० १२-१८)। अब ना० प्र० स० की आकर ग्रथमाला मे प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के द्वारा सपादित पद्माकर ग्रंथावली के एक अश के रूप मे जगद्विनोद का अत्यंत प्रामाणिक सस्करण उपलब्ध है। जगद्विनोद एक रस-सामान्य-निरूपक ग्रथ है, तथापि अन्य रसों की अपेक्षा श्रृंगाररस का अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है।

१६—बेनी प्रवीन : नवरसतरग

बेनी प्रवीन के नवरसतरंग कर रचनाकाल सवत् १८७४ है। इन्होंने स्वयं लिखा है—

> समय देखि दिग दीप युत सिद्धि चद्र बलपाइ।
> माघ मास श्री पंचमी श्री गोपाल सहाइ॥

नवरसतरंग, पद २७, पृ० ३

इस ग्रंथ का प्रकाशन प्राचीन कविमाला कार्यालय, काशी से सन् १६२५ में हुआ है। इसके संपादक है कृष्णविहारी मिश्र। इस पुस्तक मे कुल पदों की संख्या ५३३ और पृष्ठों की सख्या ७२ (भूमिका और परिशिष्ट को छोड़ कर) है। शिवसिंह सरोज मे बेनी प्रवीन का जन्म सवत् १८७३ बताया गया है पर उनकी कृति के रचनाकाल (संवत् १८७४) को ध्यान में रखकर सरोजकार की मान्यता निराधार प्रतीत होती है। ग्रथ के शीर्षक को देखने से प्रतीत होता है कि इसमें नौ रसों का समानरूप से वर्णन किया गया होगा। पर वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। आरंभ के ४६७ पदो में तो श्रृंगाररस का वर्णन है और शेष ३६ पदों मे अन्य रसों का। अतएव मुख्यतः यह एक श्रृंगार-रस-निरूपक ग्रथ है, फिर भी अन्य रसों की चर्चामात्र से इसे रस-सामान्य-निरूपक ग्रथ भी निर्दिष्ट किया जा सकता है।

१७—करन कवि : रसकल्लोल (ह० लि०)

रसकल्लोल का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के सभा संग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। इस प्रति मे कुल मिलाकर ५८४ छद तथा ३६ पृष्ठ हैं। इसका लिपिकाल १८६० विक्रम सवत् है—

इति श्री वशीधरा-मज कवि करन विरचिते रसकल्लोले रस धुनि व्यग्यादि-निरूपन नाम सपूर्न सुभमस्तु सवत् १८६० भाद्र मासे कृष्ण पदेकासी ।

रसकल्लोल, अतिम अंश ।

यह एक अनेकागनिरूपक रीतिग्रथ है, जैसा स्वय ग्रथकार ने अपनी रचना का उद्देश्य बताते हुए लिखा है—

रसगुनधुनि अरु लक्षना कविभेद मति लोल ।
बालबोध हितकर सदा कीन्हों रस कल्लोल ॥

वही, पद स० ५

इस छोटे से ग्रथ मे भी करन कवि ने रस, ध्वनि, गुण, शब्दशक्ति, रीति और वृत्ति सभी काव्यागो का निरूपण कर दिया है। यहाँ तक कि तात्पर्या शब्द-शक्ति, जो रीतिग्रथो मे अत्यत विरल है, उसे भी ग्रथकर्ता ने नहीं छोड़ा है। इस प्रसग मे नायिकाभेद, सखी, दूती, ऋतुवर्णन आदि गौण विषयो का विशद उल्लेख न कर ग्रथ को अनावश्यक विस्तार से बचाया गया है।

१८--प्रतापसाहि व्यंग्यार्थकौमुदी और काव्यविलास (ह० लि०)

प्रतापसाहि का रचनाकाल सवत् १८००-१६०० के बीच माना जाता है। इनकी दो काव्यशास्त्रीय कृतियाँ प्रसिद्ध है—व्यग्यार्थकौमुदी और काव्यविलास। 'रसचद्रिका' नामक एक तीसरे रसग्रथ का सकेत भी स्वयं प्रतापसाहि ने अपने काव्यविलास में किया है—'अग्रे हास्यरसवर्णनम् रसचंद्रिकाया। इति रसध्वनि। काव्यविलास ३।६१ (वृत्ति)'। किंतु यह ग्रथ अभी तक किसी के देखने मे नही आया है।

क--व्यंग्यार्थकौमुदी

इसका प्रकाशन वाराणसी सस्कृत यत्रालय से सवत् १६३१ में हो चुका है। भारतजीवन प्रेस, काशी से भी इसका प्रकाशन हुआ है। इसमे कुल १२७ पद और ३६ पृष्ठ हैं। इस रचना का मुख्य उद्देश्य व्यग्यार्थनिरूपण है और व्यग्यार्थ के माध्यम से ही नायिकाभेद और अलंकारों पर प्रकाश डाला गया है। रस की चर्चा इस ग्रथ मे नही है।

ख - काव्यविलास

इसकी हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के सभा संग्रह मे सुरक्षित है। इसी में प्रतापसाहि ने रसनिरूपण किया है। 'धुनिरूपवर्णन' नामक तृतीय प्रकाश में असलक्ष्य क्रमव्यंग्य ध्वनि के अतर्गत कुल ७४ पद्यों में रसनिरूपण किया गया है। यह ग्रथ निःसंदेह ममट के काव्यप्रकाश की परंपरा का माना जा सकता है।

१६—चंद्रशेखर वाजपेयी : रसिकविनोद

पटियालानिवासी चद्रशेखर वाजपेयी ने 'रसिकविनोद' नामक रसग्र थ की रचना सवत् १६०३ मे की थी—

संवत राम अकाश ग्रह पुनि आतमा विचार।
माघ शुक्ल सनि सप्तमी भयो ग्रंथ अवतार॥

रसिकविनोद, पद ४७७

महाराज नरेंद्र सिंह इनके आश्रयदाता थे। इस ग्रंथ का प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से सन् १८६४ ई० में हुआ है। इसमें कुल ४७७ छंद तथा ६७ पृष्ठ हैं। वाजपेयी जी ने स्वयं इसे रस-सामान्य-निरूपक ग्रंथ कहा है—

बरनत नव रस रीत सों लक्षण लक्ष समेत।
कृपासिंधु सब सुकविजन लैहैं सोधि सहेत॥

रसिकविनोद, ३२

जो हो, पर रस विवेचन सामान्य कोटि का है। यद्यपि ग्रथकार का दावा है कि रसिकों के विनोदार्थ यह ग्रंथ लिखा गया है। तदनुसार ही उन्होंने ग्रथ का शीर्षक भी रखा है।

२०—ग्वाल कवि : रसरंग (ह० लि०)

मथुरा बृंदावनवासी ग्वाल कवि ने वि० सं० १६०४ में रसरंग नामक रसग्रंथ लिखा था—

संवत वेद ष निधि ससी माधव सितपष साग।
पंचमी ससि को प्रकट हुआ ग्रंथ जु यह रसरंग॥

रसरंग, १। ७,पृ० २।

इसका प्रकाशन प्रायः अभी तक नही हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक सग्रह में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। इस प्रति का लिपिकाल सवत् १६२२ निर्दिष्ट किया गया है—

इति श्री रसरगे ग्वालकवि विरचिते हास्यरसादि अष्टरस वर्णनं अष्टम उमग ८ समाप्तोऽयं संवत् १६२२ चैत्र शुक्ल १३ सनि दिने॥
रसरंग उमंग ८ (अतिम अंश]

इस ग्रथ में कुल ८ उमंग हैं तथा १५३ पन्ने। रसनिरूपण ही रचना का मुख्य उद्देश्य है। ७ उमंगों में शृंगाररस का सांगोपाग प्रतिपादन है तथा केवल आठवी उमंग मे अन्य रसों का अपेक्षाकृत संक्षिप्त उल्लेख है। इस ग्रंथ मे भी रीतिपरंपरा के अनुकूल शृंगाररस को ही अधिक महत्व दिया गया है।

२१ – रसिकविहारी : काव्यसुधाकर

रसिकविहारी का असली नाम जानकीप्रसाद जी था। अपना उपनाम कहीं कहीं आपने 'रसिकेश' भी लिखा है। इनकी एकमात्र कृति (शास्त्रीय) काव्यसुधाकर है। काव्यसुधाकर का प्रकाशन युनाइटेड प्रीटिंग प्रेस, अहमदाबाद से सन् १८६६ ई० में हुआ है। इसकी प्रतियाँ अब पुराने पुस्तकालयों में ही मिलती हैं। नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तकालय मे इसकी प्रति उपलब्ध है। रसिकविहारी के निर्देशानुसार ग्रंथ का रचनाकाल सवत् १६२० है—

नभदृगग्रहससि सवत माधो मास।
भौमसुक्लयेकादसी भयो प्रकास॥

काव्यसुधाकर, १।६

इसमें परंपरागत नौ रसों का निरूपण किया गया है। अतएव इसे रस-सामान्य-निरूपक रीतिग्रंथ ही मानना चाहिए।

२२—नंदराम : शृंगारदर्पण

नंदराम के रसग्रंथ का नाम शृंगारदर्पण है। इसकी रचना संवत् १६२७ में हुई थी, जैसा उन्होंने स्वयं अपने ग्रथ में निर्देश किया है—

संबत मुनि दृगनंद ससि शुचि सित दिग भृगुवार।
राधाकृष्ण विहारमय लियो ग्रंथ अवतार॥

—शृंगारदर्पण।१।१२

इसका प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से १८६० ई० मे हुआ है। यह ग्रथ दस प्रकाशों में विभक्त है तथा इसमें कुल १५६ पृष्ठ हैं। अंतिम दो पृष्ठों में नंदराम ने अपने स्फुट कवित्तों का संग्रह किया है। यद्यपि इस ग्रंथ में नौ रसों का निरूपण किया गया है, फिर भी शृंगार की रसराजता को ध्यान में रखकर ही इसका नाम शृंगारदर्पण रखा गया है—

आलंबित शृंगाररस नौ रस को सिरताज।

—शृंगारदर्पण, १।४ (पूर्वार्ध)

आरभ के नौ प्रकाशों मे केवल नायिकाभेद एवं रसोपकरणों की चर्चा है तथा मात्र दसवें प्रकाश मे सभी रसों के लक्षण, भेद, उदाहरण आदि दिए गए हैं। अतएव विषय प्रतिपादन असतुलित है।

२३—लछिराम : महेश्वरविलास

अवध के निवासी लछिराम की रसशास्त्रीय रचना 'महेश्वरविलास' है। इसका प्रणयन ठाकुर महेश्वरसिंह बहादुर की आज्ञा से सवत् १६४७ में हुआ था—

'इति श्रीमन्महाराज श्रीठाकुर महेश्वर सिंह बहादुरजू को आज्ञानुसार

श्रीअवधनिवासी श्री लछिराम विरचितो महेश्वरविलास ग्रन्थः संपूर्ण शुभ भूयात् ॥

महेश्वरविलास, चतुर्थ, विलास की पुष्पिका

इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से सन् १८६३ ई० मे हो चुका है। नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय मे इसकी प्रति उपलब्ध है। संपूर्ण ग्रंथ चार विलासों में विभक्त है और इनमें क्रमशः ५१, ३७३, १२१ और ५१० पद हैं। अंतिम विलास मे रसनिरूपण है और उसके पूर्व नायिका वर्णन आदि। इसे साधारण कोटि का रसग्रंथ मानना चाहिए।

२४—जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : रसरत्नाकर

क—भानुजी के 'रसरत्नाकर' का प्रथम संस्करण जगन्नाथपुर, बिलासपुर से सन् १६१६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके १०६ पृष्ठों और ६ भागों में रसों का सांगोपांग उल्लेख एवं विवेचन है। रीतिकालीन परपरा के प्रभाव के साथ इसमें अर्वाचीनता का पुट भी विद्यमान है। इसमें विषयबोध के लिये गद्य और पद्य दोनों का सहारा लिया गया है। गद्य खड़ी बोली मे है और पद्य ब्रजभाषा में। स्वरचित ब्रजभाषा पद्य में इन्होंने लक्षण और उदाहरण दिए है पर कहीं-कहीं खड़ी बोली गद्य मे भी इन्होंने लक्षण प्रस्तुत किए हैं। विवेचन, भाष्य एवं पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं के उल्लेख में भी इन्होंने खड़ी बोली गद्य का आश्रय ग्रहण किया है। ग्रंथ के आरभ मे रससबधी सभी पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी रूपातर भी दे दिए गए हैं। इन्हीं कारणों से भानुजी रीतियुगीन आचार्यों की श्रेणी से भिन्न प्रतीत होते हैं। तथापि जितनी भिन्नता शैली में है, उतनी विचारों मे नहीं।

ख—भानुजी ने 'नायिकाभेद शंकावली' नामक एक दूसरा ग्रथ भी लिखा था। इसका प्रकाशन भी जगन्नाथपुर, बिलासपुर (मध्य प्रदेश) से संवत् १६८२ मे हो चुका है। ग्रथ के शीर्षक से स्पष्ट है कि यह एक नायिकाभेद विषयक ग्रंथ है। इसमे विविध सस्कृत और रीतिकालीन रसग्रथो के अनुसार नायिका-भेदों की तालिका बनाकर प्रस्तुत की गई है। पर स्वय भानुजी ने सस्कृत के किसी आचार्य के स्वर मे स्वर मिलाते हुए ग्रथ के ४६वें पृष्ठ मे लिखा है—

क्वचिदन्योन्य साकर्यमासां लक्ष्येषु दृश्यते।
इतरा अपि संख्यास्तानोक्ता विस्तर शंकया ॥

नायिकाभेद शंकावली, पृ० ४६

२५—बिहारीलाल भट्ट : साहित्यसागर

भट्टजी ने दो भागों मे साहित्यसागर नामक ग्रथ रचा है। इसका प्रकाशन संवत् १९९४ मे गगा ग्रंथागार, लखनऊ से पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के सपापन के साथ हुआ है। प्रथम भाग मे ६ तरग और द्वितीय भाग मे ९ तरग हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर १५ तरंगों मे ग्रथ के दोनों भागों का समापन हुआ है। ६ठी से ८वीं तरंगों तक तथा १३वीं तरग मे रसविषयक सामग्री को प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रथ मे अनेकविध काव्यांगों का निरूपण हुआ है—राजवंशवर्णन, साहित्य, छदवर्णन, गणागण प्रकरण, शब्दार्थनिर्णय, शृंगार वर्णन, शृंगारेतर रसों का वर्णन, गुण वर्णन, शब्दालंकार निरूपण, अर्थालंकार निरूपण, उभयालंकार, आध्यात्मिक नायिका भेद, निर्वाण निरूपण, दान प्रकरण आदि ' अतएव इसे अनेकागनिरूपक रीतिग्रंथ की कोटि में ही रखना चाहिए।

२६--कविराज सुंदर : सुदर शृंगार

कविराज सुदर ने संवत् १६८८ में सुदर शृंगार की रचना की थी, जैसा उन्होंने स्वयं ही ग्रथ मे लिखा है—

संवत सोरह सै बरस बीते अट्ठासीति।
कातिक सुदि षष्ठी गुरुहि रच्यौ ग्रंथ करि प्रीति॥

सुंदर शृंगार, पृ० ३,

इस पुस्तक का प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १८९० ई० मे हो चुका है, पर इसकी प्रति दुर्लभ है। ना० प्र० सभा के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इस पुस्तक का विभाजन परिच्छेदों मे नहीं है। पद सख्या भी १ से १०० तक दे देने के बाद पुनः १ से प्रारभ की गई है। इसमें कुल ११२ पृष्ठ हैं। इसमें मुख्यतः शृंगाररस के अतर्गत नायिकाभेदो का निरूपण किया गया है। ग्रथकर्ता ने स्वय स्वीकार किया है कि संस्कृत ग्रंथों के आधार पर ही यह पुस्तक लिखी गई है—

सुरवानी याते करी नरवानी में ल्याइ।
जातें मगु रसरीति को सब पै समुझ्यो जाइ॥
यह सुदर सिगार की पोथी रची बिचारि।
चूक्यो होइ जु कवि कछू लीजो तहाँ सुधारि॥

सुदर शृंगार, पृ० ११२

अतएव इसे नायिकाभेदविषयक ग्रंथ ही मानना चाहिए।

केशवपूर्ववर्ती कतिपय रसग्रंथ

२ —कृपाराम : हिततरंगिनी

कृपाराम ने वि० स १५६८ मे हिततरगिनी की रचना की थी। इसका प्रकाशन जगन्नाथदास रत्नाकर के संपादन के साथ भारतजीवन प्रेस, काशी से सवत् १६५२ मे हुआ है। नायिका भेदों का स्वतंत्र उल्लेख ही ग्रथ का मुख्य प्रतिपाद्य है।

२८—सूरदास : साहित्यलहरी

सूरदास ने 'साहित्यलहरी' नामक रीति ग्रंथ संवत् १६१७ अथवा १६२७ में भिन्न भिन्न विद्वानों की धारणा के अनुसार लिखा था। कई विद्वान इसे सूरदास की रचना नहीं भी मानते हैं। इसमें नायिकाभेद, अलकार, सचारी भाव और रसभेद प्रतिपादित किए गए हैं। इस ग्रथ के अब तक कई संस्करण हो चुके हैं। पुस्तक भडार, लहेरिया सराय से सवत् १६६६ में इसका प्रकाशन हुआ है। साहित्य सस्थान, मथुरा से सन् १९६१ ई० मे इसका सुदर प्रकाशन किया गया है, लाइट प्रेस बनारस और नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से सरदार कवि की टीका के साथ इसके प्रकाशन क्रमशः १८६६ ई० और १८६७ ई० मे हुए थे। १८६२ ई० मे भारतेंदु हरिश्चद्र सग्रहीत सटीक साहित्य लहरी, खड्गविलास प्रेस बाकीपुर से भी प्रकाशित हुई थी। किंतु अधिकाश प्रकाशन आज दुष्प्राप्य हैं। कुछ एक सभा पुस्तकालय मे प्राप्त है।

[२६] नन्ददास : रसमंजरी

नददास ने १६२० वि० सं० के आसपास इस ग्रंथ की रचना की थी। संवत् २००६ मे ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित तथा नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'नददास ग्रथावली' मे यह ग्रथ भी समाविष्ट है। भानुदत्त की रसमंजरी के आधार पर ही इसमे नायिकाओ विवरण दिया गया है।

३०—कवि रहीम : बरवै नायिका-भेद

संवत् १६४० के आस पास ही कवि रहीम ने बरवै नायिका भेद की रचना की थी। 'रहीम रत्नावली' के अतर्गत यह पुस्तक भी अंतर्भुक्त। पं० मायाशंकर याज्ञिक के संपादन के साथ रहीम रत्नावली का प्रकाशन साहित्य सेवा सदन, काशी से हो चुका है। इसके कई संस्करण अब तक निकल चुके हैं। इस पुस्तक में दोहे के माध्यम से नायिकाओं के लक्षण तथा बरबै छंद में उनके उदाहरण दिए गए हैं। अतएव इसे नायिका-भेद-निरूपक एक शृंगार-रस-ग्रंथ ही मानना चाहिए।

*